प्रथम अध्याय

किसान एवं खेतिहर मजदूर : जीवन और संघर्ष

भारत में कृषि सभ्यता और कृषक समाज के साक्ष्य सिंधु घाटी सभ्यता से ही प्राप्त होते हैं। सिंधु घाटी सभ्यता में कृषि समाज का हिस्सा नहीं बन पाई थी। जंगलों में उगे धान के पौधों को देखकर यह अनुमान लगाया गया कि यह मनुष्य के खाने की चीज है। यह मानव के जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी, जब उसने अन्न के दानों की खोज की। सिंधु घाटी सभ्यता में पुरुष वर्ग का कार्य जंगलों में जाकर शिकार करना था, वहीं दूसरी ओर स्त्रियों का काम भोजन का बंदोबस्त करना और रहन-सहन की समुचित व्यवस्था करना था। इस समय में स्त्रियों का दायित्व पुरुषों से अधिक था। सिंधु घाटी सभ्यता में ही मनुष्य की विभिन्न प्रकार के अन्न के दानों से पहचान हुई। किंतु यहाँ से हम कृषि सभ्यता की शुरुआत नहीं मान सकते हैं, क्योंकि अभी तक मनुष्य को अन्न के दानों से पौधे उगाने का ज्ञान नहीं था। इस संदर्भ में इरफान हबीब ने भी कहा है- "जब पौधे के बीज जंगलों में एकत्र किए जाते थे, तो निश्चय ही यह कृषि नहीं थी।"[1]

सिंधु घाटी सभ्यता में कृषि का विकास नहीं हो पाया था, किंतु कृषि से जुड़े कई तरह के बीजों की खोज इसी सभ्यता में हुई थी। इस दृष्टि से इस सभ्यता का मानव के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। अनिल चमड़िया एवं जसपाल सिंह ने अपने लेख 'कृषि संदर्भ और उत्पाद के विभिन्न पहलू' में इस बात को स्पष्ट किया है कि- "लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व पहले सिंधु घाटी सभ्यता में गेहूं की खोज की गई। तेलों के बीज, मटर, मैसूर की दाल, जौ की खोज भी इसी सभ्यता में की गई। इस सभ्यता की सबसे बड़ी भूमिका यह है कि इसमें हल और चक्के वाली गाड़ी का सिंचाई की प्रक्रिया का विकास किया गया।"[2] अन्न के दानों की खोज के साथ ही जब मनुष्य को इस बात का ज्ञान हुआ कि अनाज के इन दानों से एक नया पौधा भी उग सकता है। तो उन्होंने भूमि में अन्न के दानों को गाड़ना शुरू कर दिया। इस तरह से बीजों से अनाज उपजाने और उनके संग्रहण की भी शुरूआत हुई। मनुष्य ने इसी सभ्यता में खेती के लिए हल

की भी खोज की। कृषि के लिए उपयोगी पशुओं का पालन भी मनुष्य करने लगा। जौ और गेहूं के अतिरिक्त अन्य अनाज भी उपजाए जाने लगे। इतिहासकार इरफ़ान हबीब ने भी कहा है कि-"सिंधु घाटी के लोग गेहूं और जौ दोनों की खेती करते थे जो मानक आधुनिक भारतीय किस्में हैं, गुजरात के सिंधु नदी घाटी स्थलों पर बाजरा के दाने के साथ-साथ चावल पाया गया है। मटर, दाल और तिल और शलजम की प्रजातियाँ तिलहन हैं। सिंधु नदी घाटी की सबसे महत्वपूर्ण फसल कपास है जो सबसे पहली औद्योगिक फसलों में से एक है।"[3]

भारत में सिंधु घाटी सभ्यता के समाप्त होते ही आर्यों का आगमन हुआ। प्राप्त सक्ष्यों के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि आर्यों के आगमन के पश्चात ही सिंधु घाटी सभ्यता पूरी तरह नष्ट हुई थी। अनुमानित रूप से यह कहा जाता है कि आर्यों ने ही सिंधु घाटी सभ्यता को नष्ट किया था। प्राचीन काल में आर्यों के लिए उनके पशु ही उनकी संपत्ति थे। वे खेती करने के साथ-साथ चरवाही आदि का कार्य भी किया करते थे। गेहूं और जौ के अतिरिक्त वे कुछ अन्य अनाजों की भी खेती किया करते थे। आर्य सभ्यता में भूमि पर मालिकाना हक़ कृषकों का ही होता था अर्थात भूमि कोई सामुदायिक सम्पत्ति नहीं होती थी। जमीन को खेतों में विभक्त करके कृषकों द्वारा खेती की जाती थी।'भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी परिकल्पना' पुस्तक में इरफ़ान हबीब जी ने स्पष्ट किया है- "भूमि खेतों में विभक्त थी जिन पर अलग-अलग कृषकों द्वारा खेती की जाती थी और जिन्हें इन खेतों का मालिक (क्षेत्रपति आदि) कहा जाता था। चारागाह की भूमि संभवतया अविभाजित थी और यह समूचे गाँव के मवेशियों के लिए खुली होती थी। खेतों पर मालिकाना अधिकार स्थाई था या खानदानी या सामुदायिक आवंटन के द्वारा बदला जा सकता था, यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता है। दरअसल खेती स्थाई नहीं बल्कि प्रवासी प्रकृति की थी, जिसकी सम्भावना भूमि प्रचुरता की स्थिति में अधिक होती थी।"[4]

आर्य सभ्यता के विस्तार के साथ ही देश में विभिन्न राजाओं का आगमन हुआ और राजतन्त्र की स्थापना हुई। राज्य के विस्तार एवं समृद्धि के कारण ही राजा अपने को प्रजा का स्वतंत्र स्वामी होने का

दावा करने लगे। धीरे-धीरे राज्य के नागरिक एवं समस्त कार्य राजा के अधीन होने लगे। राजा सम्पूर्ण भूमि और सम्पत्ति का मालिक बन गया। समाज को धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक आधार पर कई वर्गों में विभक्त कर दिया गया। राज्य में व्यवसाय को भी विभिन्न वर्गों में विभाजित किया गया। गाँव की सर्वाधिक जनसंख्या किसानों की थी जिनका कार्य खेती एवं पशुपालन था। राजा इन किसानों की उपज का एक हिस्सा कर के रूप में लेता था। 'भारत का बृहत् इतिहास' पुस्तक (प्राचीन भारत) में रमेशचन्द्र मजुमदार जी का कहना है- "किसान गाँवों में रहते थे, जिनकी संख्या प्रत्येक राज्य में बहुत अधिक थी। गाँवों को बहुत अंशों में स्वायत्त शासन प्राप्त था, यद्यपि वे राजा के अधीन थे। ऊपर कहे गए कर राजा को गाँव से मिलते थे और कभी-कभी वह गाँव के मुखिया या गाँव के कर्मचारियों की नियुक्ति की मांग करता था, जो उसके लिए गाँव से कर एकत्रित करते थे। कृषि-भूमि में राजा का अधिकार शायद उपज के एक हिस्से तक ही सीमित था। राजा सरकारी कर माफ़ कर सकता था या जिस-किसी को भी चाहता, दे सकता था।"[5]

राज्य की सम्पूर्ण शक्ति का अधिकार राजा के हाथ में होता था। राजा ही गाँव के संपूर्ण किसानों को भूमि खेती करने के लिए देता था। चरवाहे का काम मवेशी चराना होता था। गाँव की सार्वजनिक भूमि चरवाहे के मवेशी चराने के काम आती थी। राजा की तरफ से कुछ कर्मचारी नियुक्त किए जाते थे जिनका काम विभिन्न कार्यों में लगे लोगों से कर वसूलना होता था। राज्य के सम्पूर्ण कार्य राजा के आदेशानुसार ही होते थे- "ग्रीक लेखकों के अनुसार उपज के चौथाई भाग के अतिरिक्त किसान एक भूमि कर देता था, क्योंकि सम्पूर्ण भारत राजा की सम्पति है और कोई भी व्यक्ति भूमि को अपना समझकर नहीं रख सकता है।"[6]

प्राचीनकाल से ही भारत का बाह्य जगत से संबंध रहा है। यहाँ पर आर्य और द्रविड़ों के आगमन के साथ ही भारत से इनका गहरा सम्बन्ध जुड़ गया। प्राचीनकाल में कृषकों की दशा सामान्य रही। भारत में इस्लाम के प्रवेश के साथ ही यहाँ की सामाजिक परिस्थितियों में भी परिवर्तन हुए एवं कृषि क्षेत्र में भी

नए-नए परिवर्तन हुए। कृषि सम्बन्धी नई तकनीकों एवं औजारों का विकास मध्यकाल में ही हुआ। कृषि तकनीकों के विकसित होने से कृषि क्षेत्र का भी विस्तार हुआ। इस काल में ही कृषि क्षेत्र में नई फसलें जैसे तम्बाकू, रेशम की पैदावार पर जोर दिया गया। मुग़लकाल में भी भूमि राजा की ही सम्पत्ति रही। वे किसानों को खेती करने के लिए जमीन देते थे, बदले में उनसे कर लेते थे। इरफ़ान हबीब का कथन उल्लेखनीय है कि- "किसानों के जमीन पर दावा। सचमुच, चौदहवीं सदी का एक दस्तावेज कहता है, किसान पैदा स्वतंत्र होते हैं लेकिन कर अदा करने के दायित्व के निर्वहन के लिए जरुरी है कि वे जिन गाँवों में खेती कर रहें हैं उनके साथ जुड़े रहें। किसानों को जमीन जोतने के लिए मजबूर करने, उन्हें यह छोड़ने से रोकने और यदि वे ऐसा करते हैं तो उन्हें वापस लाने का अधिकार अधिकारियों को था और मुग़लकाल में यह कई अवसरों पर व्यक्त किया गया है।"[7]

मध्यकाल में ही सामंतवाद का विस्तार हुआ। राजा का अधिकार क्षेत्र विस्तृत होने के कारण इस प्रथा का विस्तार हुआ। सामंतवाद में भूमि का बहुत बड़ा महत्व है। इस प्रथा में नियुक्त किए गए सामंत ही किसानों की जमीन के मालिक होते थे। सामंतों का जीवन सुख-सुविधाओं से भरा-पूरा होता था। वे राजा द्वारा निर्धारित कर किसानों से वसूल कर राजा को देते थे। रामशरण शर्मा का कथन है कि-"भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना से पूर्व सामंतवाद कई बार आया। लेकिन हम सामंतवाद को एक ऐसी व्यवस्था के रूप में देखें, जिसमें किसानों की जमीन और देह पर अपने उच्चतर अधिकारों के द्वारा श्रीमंत-वर्ग उपज का सारा अतिरिक्त हिस्सा हड़प लेता था और किसानों के पास उतना ही छोड़ता था जितना खा-पहन कर वे उस वर्ग के लाभ के लिए आगे भी मेहनत-मशक्कत करते रह सकें।"[8] सामंतवाद का आधार ही भारत का कृषक समाज था। छोटे सामंत हों या बड़े वे किसानों से वसूले गए कर पर ही अपना जीवन व्यतीत करते थे। राजा और सामंत मिलकर किसानों का शोषण करते थे। किसानों पर सामंत की तरफ से तरह-तरह की पाबंदियां थीं उन्हें सामंतों के आदेशानुसार ही सारे कार्य करने पड़ते थे। अपने खेतों के साथ-साथ उन्हें सामंतों के खेतों में भी बेगार के तौर पर कार्य करने पड़ते थे। 'विश्व इतिहास की भूमिका'

पुस्तक में रामशरण शर्मा का कथन है कि-"किसानों पर तरह-तरह की पाबंदियां थीं। सबसे पहली यह कि प्रत्येक किसान को अपने सामंत के 'मैनरवाली' (खुदकाश्त) जमीन पर बिना मजदूरी के हफ्ते में दो या तीन दिन काम करना पड़ता था। यही नहीं, फसल के समय में और दूसरे मौके पर भी उनसे तरह-तरह की बेगारी ली जाती थी जिसे 'कार्वी' कहते हैं। जब फसल काटने की धूम मची होती, तो उसे सबसे पहले अपने मालिक की जोतवाली जमीन में फसल काटने जाना पड़ता था। उसे सबसे पहले मालिक के खेत को जोतना पड़ता था।"[9]

मध्यकाल की सामंती प्रथा आधुनिक काल में अंग्रेजों के आगमन के साथ ही जमींदारी प्रथा के रूप में परिवर्तित हो गयी थी। अंग्रेजों के आगमन के साथ ही भारत में कृषक और मजदूरों की दशा दयनीय हो गयी। अंग्रेजों के आगमन और ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना ने लगान वसूली के लिए तरह-तरह के कानून बनाए। भारत के अलग-अलग भागों में स्थाई-बंदोबस्त, रैयतवारी और महलवारी व्यवस्थाएं लागू की गईं। स्थाई बंदोबस्त के अंतर्गत कम्पनी द्वारा नियुक्त किए गए जमींदार किसानों से लगान वसूल करते थे। लगान वसूल करने की इस व्यवस्था का सुझाव 1793 में कार्नवालिस ने दिया था। उन्होंने यह सुझाव दिया- "भू-राजस्व की वसूली जमीदारों के हाथ हो, वे प्रजा से कितना वसूल करें, इस बारे में कम्पनी को कुछ तय नहीं करना है। जो भूमि-कर कंपनी को दीवान देता है, वही उसकी जगह जमींदार दे तो हमें कोई फर्क नहीं पड़ता। और अगर जमींदार भू-राजस्व न दे सके तो उसकी जमींदारी खत्म करके उसकी जगह नए जमींदार को बिठा दिया जाए।"[10]

कार्नवालिस की तरफ से कंपनी को कर वसूली के लिए जो सुझाव दिए, वह किसानों के लिए नासूर बन गयी। कंपनी द्वारा नियुक्त जमींदार अपनी जमींदारी बनाए रखने के लिए किसानों से मनचाहा लगान वसूला करते थे। कभी-कभी किसान की पैदावार अच्छी नहीं होती थी तब भी उन्हें तय लगान अदा करना पड़ता था। किसान के घर में खाने के लिए अनाज नहीं होने पर भी उन्हें लगान देने के लिए मजबूर किया जाता था। कभी-कभी अन्न की खेती न करके उस उपज की खेती करते थे जिसे वे खाने के

लिए इस्तेमाल न कर सकें। ऐसा इसलिए होता था ताकि वे कर चुका सकें। 'आधुनिक भारत' में इतिहासकार सुमित सरकार का कथन है कि- "कोयंबटूर के किसानों ने एक बार एक अंग्रेज जिलाधीश से कहा था कि वे कपास की खेती केवल इस कारण से कर रहे हैं कि वे कपास को खा नहीं सकते। यदि वे अन्न उगाते तो उसे खा डालते और फिर लगान भरने का पैसा कहाँ से आता। अब वे आधे पेट रहते हैं, किंतु लगान तो चुका सकते हैं।"[11]

रैयतवारी प्रथा को टॉमस मुनरो ने सीधे किसानों से लगान वसूलने के उद्देश्य से लागू किया था। महलवारी प्रथा में गाँव के सम्पूर्ण किसानों से गाँव का मुखिया कर वसूल कर कम्पनी को देता था। प्राचीनकाल से मध्यकाल और आज आधुनिक काल तक किसान विभिन्न परिस्थितियों का सामना करता आ रहा है। समाज की परिस्थितियाँ तो समय-समय पर बदलती रहीं, किंतु किसान की स्थिति वही रही जो प्राचीनकाल में थी। आज इक्कीसवीं सदी में भी किसान समस्याओं से ही गुजर रहा है। किसान इसी परिस्थिति में लगभग पांच हजार सालों से जीवन व्यतीत कर रहा है।

1.1 किसान से अभिप्राय

क) सुप्रसिद्ध इतिहासकार इरफ़ान हबीब के शब्दों में- "किसान वह है जो स्वयं के परिश्रम, अपने औजारों एवं अपने परिवार की श्रम शक्ति से कृषि कार्य करता है।"[12]

ख) संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर के अनुसार किसान का अर्थ है- "कृषि या खेती करने वाला।"[13]

ग) राजपाल हिन्दी शब्दकोश में- ''किसान का अर्थ खेती, कृषक कार्य से है।"[14]

घ) ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी के अनुसार- "किसान का अर्थ खेती करना, जमीन को फार्म के रूप में प्रयोग करना।"[15]

ड.) भारत विश्वकोश के अनुसार-"किसान ऐसे लोगों को कहा गया है, जो अपनी आजीविका और जीवन का गुजर-बसर खुद भूमि जोतकर चलाते हैं, जो स्वयं के उपभोग के लिए उत्पादन करते हैं तथा जिनका स्वयं पर नियंत्रण होता है, साथ ही जिनकी पारम्परिक ग्रामीण जीवन शैली होती है।"[16]

च) मार्क्सवादी विचारकों के अनुसार- "ऐसे व्यक्तियों को किसान कहा जाता है जो ग्रामीण परिवेश में पारिवारिक आधार पर कृषि संबंधित सभी कार्य परिवार जनों के सहयोग से सम्पादित किये जाते हैं।"[17]

छ) सामाजिक मानवशास्त्रियों ने- "किसानों के सांस्कृतिक रीति, रिवाजों, आदतों और मानदंडो के साथ-साथ उनकी संकुचित दृष्टि और परम्पराओं से चिपके रहने की प्रवृत्ति के आधार पर की है।"[18]

इन परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि किसान का अर्थ है कृषि कार्य से जुड़ा हुआ व्यक्ति, वह जो खेती का काम करता हो, खेतों को जोतने, बीज बोने से लेकर फसल उगाने तक का कार्य करता है। इस अर्थ में किसान सीधे-सीधे उस व्यक्ति को माना जायेगा जो जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं का खेत में उत्पादन करता है। ऐसे व्यक्ति स्वयं और अपने परिवार की सहायता से कृषि संबंधी कार्यों को करते हैं औऱ इनके परिवार की जीविका का मुख्य साधन भी खेती ही होती है।ऐसे ही व्यक्ति को समाज में कृषक की संज्ञा दी जाती है।

1.2 किसान के प्रकार

हमारे देश में किसानों को कई श्रेणियों में विभाजित किया गया है बड़े किसान, मध्यम किसान, लघु किसान, भूमिहीन एवं स्त्री किसान।

क) भू-स्वामी या बड़े किसान

भू-स्वामी का अर्थ होता है 'भूमि का मालिक'। आज के समय में बड़े किसान उन किसानों को कहा जाता है जिनके पास कम से कम 10 हेक्टेयर भूमि हो। जमींदार, भू-स्वामी या बड़े किसान के पास भारत की कृषि योग्य भूमि का अधिकांश हिस्सा होता है। ये स्वयं खेती न करके मजदूरों से खेती करवाते

हैं। 'पंजाब का कृषि क्षेत्र बदलती जमीनी हकीकत और संघर्ष का निशाना' लेख में 'जगरूप' जी ने कहा है कि- "जो किसान जमीन की जोत बड़ी होने के चलते उत्पादन में परिवार की मेहनत के साथ-साथ, भाड़े के श्रम से, दिहाड़ीदार आदि रखकर खेती करता है, उसे बड़ा किसान कहा जाता है।"[19] औपनिवेशिक काल से पहले भारत में सामंती प्रथा का प्रचलन था। इन सामंतों को राजा द्वारा नियुक्त किया जाता था। यद्यपि सामंती प्रथा स्वतंत्रता के पश्चात समाप्त हो गयी, किन्तु भू-स्वामी के रूप में यह प्रथा अब भी जीवित है।

राजा द्वारा सामंतों की नियुक्ति के साथ ही उनको कुछ विशेषाधिकार भी दिए जाते थे। राज्य के किसान एवं मजदूर इन्हीं सामंत के अधिकार-क्षेत्र में आते थे। रामशरण शर्मा ने सामंत के अधिकार-क्षेत्र के बारे में 'विश्व इतिहास की भूमिका' पुस्तक में स्पष्ट किया है- "सामंतवाद में शासक वर्ग के पास बड़ी-बड़ी पुश्तैनी जमींदारियाँ थीं। बड़े-बड़े भूमिपति अपनी जमीन का कुछ हिस्सा अपने पास रख लेते थे फौजी सेवा करने की शर्त पर वे छोटे-छोटे भूमिपतियों को देते थे। भूमिपति छोटे हों या बड़े किन्तु उनकी अपनी-अपनी जमीन एक ही ढंग से जोती जाती थी।"[20] सामंतों को राजा द्वारा जागीरें भी प्रदान की जाती थी। साथ ही राजा सामंतों को और भी तमाम अधिकार देता था। कभी-कभी किसी विशेष मुद्दे पर बातचीत करने के लिए या कोई महत्वपूर्ण फैसला लेते समय भी राजा के द्वारा इन्हें दरबार में बुलाया जाता था। ये राजा को प्रभु मानते थे। इनका कार्य राजा को प्रसन्न रखना होता था। इन्हें राजा को उपहार आदि भी देने पड़ते थे। विवाह आदि अवसरों पर राजा की संतानों के लिए भी इन्हें भेंट चढ़ाने पड़ते थे। सामंतो के प्रति राजा के भी कुछ कर्तव्य निर्धारित होते थे जैसे कि वह अपने सामंतों की रक्षा करेगा, अकारण उनसे उनकी भूमि नहीं छीनेगा आदि। यह प्रथा पीढ़ी दर पीढ़ी चलती थी। सामंत की मृत्यु के पश्चात यह जागीर उसके पुत्र या पुत्री को दे दी जाती थी।

जिस प्रकार राजा अपने सामंतो की रक्षा करता था उसी प्रकार सामंत का भी यह कर्तव्य होता था कि कठिन समय में वह किसानों की मदद करें। वह किसानों से लगान वसूल कर राजा तक पँहुचाता था।

खराब फसल होने पर या अकाल आदि पड़ने पर कभी-कभी किसानों का लगान माफ भी कर दिया जाता था। सामंतो की कमाई का जरिया किसानों से प्राप्त लगान ही होता था। किसानों को सामंतों के यहाँ बेगार भी करनी पड़ती थी। अपने खेती के काम से पहले सामंतों के खेतों के कार्यों को करना पड़ता था। रामशरण शर्मा के शब्दों में- ''सच कहा जाए तो सारी सामंत प्रथा का आधार किसान वर्ग ही था। ऊपर के सामन्त चाहे बड़े हों या छोटे, गृहस्थ हो अथवा पादरी सब के सब किसानों की कमाई पर मौज उड़ाते थे। गृहस्थ सामंत लड़ते थे और पादरी पूजा करते थे। दोनों मिलकर राज चलाते थे और दोनों को खिलाने पिलाने का काम किसानों का था।''[21]

प्राचीन और मध्यकाल की सामंती व्यवस्था आधुनिक काल में जमींदारी व्यवस्था के रूप में परिवर्तित हो गई किन्तु जमींदारों द्वारा किसानों का और भी अधिक शोषण किया जाने लगा। 1789 में फ्रांसीसी क्रांति हुई, जिसका कारण ही था जमींदारी प्रथा का खात्मा। फ्रांसीसी क्रांति के फलस्वरूप फ्रांस में जमींदारी प्रथा जड़ से समाप्त हो गई। अर्थात जब अमेरिका एवं रूस अपने को इस प्रथा से मुक्त कर रहे थे, ठीक उसी समय 1793 में भारत में जमींदारी प्रथा की शुरूआत हुई यह अपने आप में बहुत ही बिडंबनापूर्ण स्थिति थी। जब समस्त देश अपने को इस अभिशाप से मुक्त कर रहा था तब भारत में इस प्रथा की शुरूआत हो रही थी। स्वामी सहजानंद सरस्वती जमींदारों के बारे में कहते हैं- ''जमींदारी का अर्थ है किसानों की वास्तविक स्थिति से कोई संपर्क न रखते हुए उनसे मालिकाना (पावना) वसूल करना। इस जमींदारी के चलते रक्त चूसने वाले का एक दल ऐसा पैदा हो गया है जो केवल लगान वसूला करता है, जिसके अनेक रूप और विभिन्न नाम पाए जाते हैं और जिसका सिर्फ यही पेशा है कि किसानों के पसीने की गाढ़ी कमाई पर मौज उड़ाएं।''[22] सहजानंद सरस्वती जी के कथन से स्पष्ट है कि समाज में हमेशा से सरकार और किसानों के बीच कोई न कोई बिचौलिये का काम करता रहा है जो किसानों की बिगड़ती दशा के लिए जिम्मेदार है। सामंती प्रथा और जमींदारी प्रथा में जो स्थान सामंत और जमींदार

का होता था आज वही स्थान भू-स्वामी अर्थात बड़े किसानों का है। किसानों का ये वर्ग खेतों में मजदूर लगाकर काम करवाता है एवं खेती उनके लिए एक व्यवसाय के रूप में काम करती है।

ख) मध्यम किसान

जमींदारों या बड़े किसान के बाद किसानों की एक श्रेणी मध्यम किसानों की है। वर्तमान समय में मध्यम किसान ऐसे किसानों को कहा जाता है जिनके पास 10 हेक्टेयर से कम और 5 हेक्टेयर से ज्यादा भूमि हो। किसानों की श्रेणियों के वर्गीकरण में मार्क्सवाद के अनुसार-"मध्यम किसान उसे कहा जाता है जो मुख्यतः पारिवारिक श्रम का उपयोग करते हैं।"[23] मध्यम किसान अपनी जमीन पर कृषि करके अपनी जीविका चलाने में सक्षम होते हैं। इनके पास बड़े किसानों जितने पर्याप्त संसाधन नहीं होते हैं किन्तु ये अपने स्तर से खेती करने में सक्षम होते हैं। मध्यम किसान पारिवारिक श्रम और खेतिहर मजदूरों के सहयोग से खेती करते हैं। इन्हें अपनी जीविका चलाने के लिए किसी और की भूमि पर मजदूरी करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। मध्यम किसानों की स्थिति से हमारा परिचय स्वामी सहजानंद सरस्वती इन शब्दों में करवाते हैं- "मध्यवर्गीय या खाते पीते किसानों की बात। ये वही हैं जिनकी खेती की पैदावार अपने काम चलाने से कुछ ज्यादा होती है। इनके खेत चाहे अपने होते हैं या जो औरों से पट्टे या लगान पर खेत लेकर खेती करते हैं। इनकी खेती में मजदूरों से भी काम करवाया जाता है और इनका अपना परिवार भी काम करता है।"[24] मध्यम किसान ही समाज का वो वर्ग है जो स्वयं की भूमि पर अपना गुजारा करने में सक्षम होते हैं।

ग) लघु एवं सीमांत किसान

मध्यम किसानों के बाद नाम आता है लघु एवं सीमांत किसानों का। लघु एवं सीमांत किसानों की स्थिति आज के समय में अत्यंत ही दयनीय है। लघु किसानों के पास 5 हैक्टेयर से कम और 1 हेक्टेयर से अधिक भूमि होती है। इस संदर्भ में मैत्रेयी कृष्णराज ने कहा है कि- "12 फ़ीसदी किसानों के पास 1 से 2 हेक्टेयर तक जमीन है जिन्हें छोटे किसान कहा जाता है।"[25] वहीं यदि हम सीमांत किसानों की बात करें

तो इनके पास 1 हेक्टेयर या उससे कम जमीन होती है। 'भूमि हकदारी एवं भूमि साक्षरता मार्गदर्शिका' पुस्तक में भी ये उल्लेख मिलता है कि- "सीमांत किसान उन्हें कहेंगे जिसके पास एक हेक्टेयर से अधिक जमीन न हो।"[26] हमारे देश में लगभग 67.04% परिवार लघु एवं सीमांत किसानों की श्रेणी में आते हैं। लघु एवं सीमांत किसानों के पास खेती से संबंधित पर्याप्त संसाधनों का अभाव होता है। वे किराये पर भी इन संसाधनों की सहायता से खेती करने में असमर्थ होते हैं क्योंकि इनके पास इतनी भी भूमि नहीं होती कि वे इनका खर्च वहन कर सकें। जमीन के अभाव में ही इन्हें तमाम समस्याओं से गुजरना पड़ता है। जसपाल सिंह सिद्धु एवं अनिल चमड़िया ने अपने लेख 'कृषि संदर्भ और उत्पाद के विभिन्न पहलू' में यह कहा है कि- ''सीमांत किसान उन्हें कहते हैं जिनके पास जमीन का बेहद छोटा टुकड़ा होता है।''[27] पूंजीवाद से पहले हमारे देश में पांरपरिक तरीके की खेती प्रचलन में थी। किसानों के पास कम से कम एक बैलों की जोड़ी होती थी, जिनकी सहायता से वो अपनी फसल की बुआई कर लेते थे, किन्तु आज की कृषि मशीनों पर आधारित हो गई है। किसानों को टैक्टर, थ्रेसर आदि की सहायता से खेती करना पड़ता है। इसका नतीजा उनको खेती से मिलने वाला लाभ भी इन्हीं संसाधनों को जुटाने में चला जाता है। खुद के पशु होने से छोटे किसानों को खेती करने में अतिरिक्त धन व्यय नहीं करना पड़ता था।

प्राकृतिक आपदाओं का भी सर्वाधिक प्रभाव छोटे एवं सीमांत किसानों पर ही पड़ता है। बाजारीकरण के परिणामस्वरूप इन्हें अपने अनाज को मंडी तक पहुंचाने में भी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। 'देस हरियाणा' पत्रिका में छोटे किसानों की स्थिति को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है- ''कृषि क्षेत्र में छोटी जोत के किसान के लिए कोई जगह नहीं है। भारत में 85 प्रतिशत किसानों पर 2 एकड़ से कम जमीन है। आंकड़े बताते हैं कि छोटे किसान गैर संस्थागत स्त्रोत साहूकार से 95 प्रतिशत ऋण लेते हैं। सरकार की ओर से कर्ज माफी, सरकारी सब्सिडी, संस्थागत खर्च, प्रोत्साहन और सहूलियतों का लाभ बड़े किसान को मिलता है। खुदकुशी करने वालों में बड़ी संख्या में छोटे किसान हैं।"[28] सरकार द्वारा चलायी जा रही योजनाओं का लाभ भी ज्यादातर बड़े और मध्यम किसानों को ही

मिल पाता है। लघु एवं सीमांत किसान इन योजनाओं के लाभ से वंचित रह जाते हैं, इन्हें इन योजनाओं की पर्याप्त जानकारी नहीं होती है और यदि होती भी है तो सरकारी कार्यालय एवं बिचौलियों के चक्कर काट-काट कर ये इतना ऊब जाते हैं कि इन्हें इन योजनाओं में कोई रूचि ही नहीं रह जाती है। देश में बड़े किसानों की संख्या कम होते हुए भी खेती योग्य भूमि का अधिकांश हिस्सा उन्हीं के पास है।

छोटे एवं सीमांत किसान कम भूमि पर किसी तरह से अपना गुजर बसर करने को मजबूर हैं। सरकार की तरफ से इनकी स्थिति में सुधार लाने का कोई प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। जो योजनाएं चलाई जा रही हैं उनसे इनकी स्थिति और भी बदतर होती जा रही है। कारण यह है कि योजनाएं छोटे एवं सीमांत किसानों को ध्यान में रखकर बनाई ही नहीं जाती हैं। इस संदर्भ में अनिल चमड़िया जी का कथन है कि- ''छोटे किसानों की गरीबी बढ़ती जा रही है। प्रक्रिया यह चल रही है कि जिसमें छोटा किसान कर्जे में चला जाता है या खेती से ऊबता जा रहा है और बड़े किसानों और कार्पोरेट हाउसों के लिए जमीन हड़पने का मौका बढ़ता जा रहा है।''[29] इनके पास कम भूमि होती है इसलिए अनाज का उत्पादन भी कम होता है। धनाभाव के कारण इन्हें अपना अनाज बेचने में भी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। इनके पास अनाज भंडारण की भी समुचित व्यवस्था नहीं होती है इसलिए कम मूल्य पर ये अपना अनाज तत्काल बेचने पर मजबूर होते हैं। मंडियों में भी इन्हें कोई जगह नहीं मिलती है, इसलिए मजबूर होकर इन्हें छोटे व्यापारियों को ही अपनी उपज बेचनी पड़ती है। परिणामस्वरूप सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम समर्थन मूल्य भी इन्हें नहीं प्राप्त हो पाता है।

घ) भूमिहीन किसान

लघु एवं सीमांत किसानों के बाद आते हैं भूमिहीन किसान या खेतिहर मजदूर। इन किसानों की जीविका दूसरों के खेतों में श्रम करके चलती है इसलिए इन्हें खेतिहर मजदूर कहते हैं। खेतिहर मजदूर की परिभाषा 'भूमि हकदारी एवं भूमि साक्षरता पुस्तक में इस प्रकार मिलती है- ''खेतिहर मजदूर का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जिसकी जीविका का मुख्य साधन खेती संबंधी मजदूरी हो।''[30] वर्तमान समय की कृषि

प्रणाली के कारण ही लघु एवं सीमांत किसान खेतिहर मजदूर वर्ग में शामिल होते जा रहे हैं। खेतिहर मजदूर वर्ग के पास भूमि का बहुत ही छोटा टुकड़ा होता है जिससे इनका गुजारा होना मुश्किल होता है। भारत में खेतिहर मजदूरों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। जी.एस.भल्ला के अनुसार- ''2001 की जनगणना के अनुसार कृषि में संलग्न सभी लोगों के सापेक्ष में खेतिहर मजदूरों का अनुपात 1971 के 37.8 प्रतिशत से बढ़कर 2001 तक 45.6 प्रतिशत हो गया। इस दौरान(1971 से 2001 तक), खेतिहर मजदूरों की संख्या 2.74 प्रतिशत प्रतिवर्ष की चक्रवृद्धि दर दर्ज करते हुए 45.7 मिलियन से 106.8 मिलियन हो गई, यह वृद्धि दर संपूर्ण कृषि में संलग्न लोगों के लिए 2.07 प्रतिशत थी।''[31] इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि देश में दिन-प्रतिदिन खेतिहर मजदूरों की संख्या बढ़ रही है। इसका एक कारण संयुक्त परिवारों का विखंडन भी है जिससे उनकी भूमि आपस में बंट जाती है। पहले से ही कम भूमि परिवार के विघटन के पश्चात और भी कम हो जाती है। कम भूमि पर जीवनयापन असंभव होने के कारण ही इन्हें दूसरों के खेतों में मजदूरी करनी पड़ती है। खेती-किसानी का काम ही सामूहिक होता है। इस संदर्भ में एम.एन. श्रीनिवास जी का कथन है कि- ''कई मामलों में बड़ा परिवार समूह छोटे परिवार समूह से कहीं दक्ष उत्पादक इकाई सिद्ध होता है। खासकर वहां-जहां लगातार काम करने की जरूरत होती है, जैसे कि फसल की कटाई के दिनों में जब मजदूर जुटाकर उनसे तेजी से काम करवाना होता है। छोटे संयुक्त परिवार की तुलना में बड़ा संयुक्त परिवार औजारों और पशुओं के लिए पूँजी सुविधा से जुटा पाता है। इस प्रकार भूमि-सुधार का एक अनदेखा लेकिन अवश्यम्भावी पक्ष अपेक्षाकृत छोटे परिवारों की तरफ धकेलना और परिणामस्वरुप कृषि दक्षता में कुछ कमी है।''[32] परिवारिक विघटन के पश्चात छोटे एवं सीमांत किसानों की भूमि छोटे-छोटे टुकडों में बंट जाती है। समय के साथ जैसे ही इन किसानों पर कर्ज का बोझ बढ़ता जाता है इनकी भूमि इनसे छिनती जाती है और ये भूमिहीन हो जाते हैं। यही कारण है कि ये मजदूरी करने पर मजबूर हो जाते हैं। इन खेतिहर मजदूरों की भी कई श्रेणियाँ होती हैं जैसे बटाईदार किसान, ये किसान बड़े किसान या मध्यम किसानों की भूमि कुछ समय के लिए ले लेते हैं और उस पर कृषि करते हैं और उत्पादन

का एक निश्चित भाग वे उनको देते हैं। प्राचीन एवं मध्यकाल में इन्हीं खेतिहर मजदूरों को 'कम्मी' कहा जाता था। उस समय में उन मजदूरों की स्थिति इतनी दयनीय नहीं होती थी जितना कि आज के समय में है। इनके पास एकाध एकड़ जमीन होती थी। ये सामंतों की जमीन से जुड़े रहते थे। इन्हें उनके यहाँ जीवन भर बेगार करनी पड़ती थी। उस समय में 'कम्मी' की स्थिति का वर्णन पोप इन्नोसेंट तृतीय (1198-1916) ने अपने शब्दों में किया है- "कम्मी सेवा करता है, उसे धमकियों से डराया जाता है, बेगारियों से तंग किया जाता है, चोटों से कष्ट दिया जाता है। साम्पत्तिक अधिकारों से वंचित रखा जाता है, क्योंकि उसके पास कुछ नहीं रहता है तो उसे मजबूर होकर कमाना पड़ता है और यदि उसके पास कुछ रहता है तो उसे नहीं रखने को बाध्य किया जाता है, मालिक का कसूर कम्मी की सजा है, कम्मी का कसूर मालिक के लिए उस पर टूट पड़ने का बहाना है।"[33]

इससे स्पष्ट होता है कि खेत-मजदूरों की स्थिति हमेशा से दयनीय ही रही है। आजादी के बाद भूमि सुधार प्रक्रिया के लागू होने के बावजूद देश में खेतिहर मजदूर बढ़ते ही जा रहे हैं। इनकी जीवन शैली में कोई परिवर्तन नहीं आया। बटाईदार किसान दूसरों की जमीन पर खेती तो करते हैं। किन्तु किसी प्राकृतिक आपदा आने पर या किसी अन्य कारणवश खेती की पैदावार घटने या नष्ट होने पर उन्हें सरकार द्वारा चलायी गयी नीतियों का कोई लाभ नहीं मिल पाता, क्योंकि जमीन उनके नाम नहीं रहती। इसलिए सरकार द्वारा दिए जाने वाले मुआवजे का लाभ भी उनके मालिकों को ही मिलता है। खेतिहर मजदूरों में वे किसान भी शामिल हैं जो बड़े किसानों के यहाँ उनके पशु के चरवाहे के तौर पर नियुक्त किये जाते हैं। उनके बाग की रखवाली करते हैं, मुर्गी पालन का काम करते हैं। इसके साथ ही साथ उन्हें किसानों के घर बेगार भी करनी पड़ती है। पहाड़ी क्षेत्र के किसानों का जनजीवन मैदानी क्षेत्र के किसानों से भिन्न होता है। आजादी से पहले ये लोग झूम खेती किया करते थे। ठंड में दीवाली के बाद ये लोग बड़ी संख्या में तराई भाबर चले जाते थे और वहाँ झाड़ियों और पेड़ों को काटकर समतल भूमि बना लेते थे और एक फसल बोते थे और होली से पहले अपने गाँव लौट आते थे। यह अवधि छः महीने की होती, किन्तु आजादी के बाद

औपनिवेशीकरण के दौर में यह सब समाप्त हो गया जिससे यहाँ के किसानों को खेती करने में असुविधा होने लगी। परिणामस्वरुप लोग पहाड़ों से शहरों की तरफ पलायन करने लगे। इस संबंध में धीरेन्द्र झा के लेख 'खेत मजदूर : हाशिये का बढ़ता हस्तक्षेप' में भी उल्लेख मिलता है- ''विश्व व्यापार नियंत्रित भारतीय कृषि नीति ने जिस कृषि संकट को पैदा किया है उसकी सबसे ज्यादा मार गाँव के खेत मजदूरों पर पड़ी है, कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसरों पर बेतहाशा कमी आई है, रोजगार के लिए मजदूरों का पलायन बड़े पैमाने पर हो रहा है।"[34] इस प्रकार से आज के बदलते समय में खेतिहर मजदूरों की संख्या में दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है।

ङ) महिला किसान

प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार सर्वप्रथम महिला के हाथों ही अनाज का बीज बोया गया था। रामशरण शर्मा के अनुसार- ''अफगानिस्तान और उत्तर-पश्चिम चीन के बीच की भूमि में गेहूँ की खेती के प्रारम्भिक केन्द्र थे। ऐसे गेहूँ के पुराने अवशेष मेसोपोटामिया (दजला और फरात के बीच की भूमि), तुर्किस्तान, फारस और भारत वर्ष में मिले हैं। सम्भवतः पहले जहाँ पुरुष शिकार पकड़ने के पीछे लगा रहता था, स्त्री ने खेती का आविष्कार किया। स्त्रियों ने जो खाने योग्य जंगली अनाज बटोरा करती थीं, एक महान आविष्कार किया। उन्होंने पाया कि अनाज के दाने से नया पौधा भी पैदा हो सकता है। वे जमीन में अनाज के दाने गाड़ने लगीं। इस प्रकार खाद्य संस्करण से खेती का जन्म हुआ। धीरे-धीरे जौ-गेहूँ के अतिरिक्त तरह-तरह के दूसरे अनाज भी उपजाए जाने लगे।''[35] शुरूआती दौर में स्त्रियाँ हीं घर के काम काज के साथ-साथ कृषि भी संभालती थी। उस समय का परिवार मातृसत्तात्मक था। किसी स्त्री पर एक पुरुष का अधिकार नहीं होता था। स्त्री अपनी स्वेच्छा से किसी के साथ भी रह सकती थी। किन्तु कालांतर में पुरुष का घर पर अधिकार बढ़ने लगा और खेती या अन्य व्यवसाय पुरुषों के हाथ में चला गया। महिला कृषि के प्रत्येक कार्य में अपनी भूमिका निभाती हैं, किंतु आज भी पति के जीवित रहते किसी महिला के नाम पर भूमि अंतरित नहीं होती। यह बात अत्यंत सोचनीय है कि जिस स्त्री के द्वारा कृषि का आविष्कार

हुआ, वही आज इस व्यवसाय से जुड़े होने के बावजूद कहीं भी किसान में शामिल नहीं की जाती। महिलाएं कृषि कार्य में हमेशा से सहयोग देती रही हैं। जैसे कृषि उत्पाद से संबंधित वस्तुओं का देखभाल करना, बगीचे की रखवाली करना, मुर्गी पालन, पशुओं को चराने का काम आदि काम में उनकी भागीदारी होती है। इसके अतिरिक्त खेतों में निराई-कटाई फसल की देखभाल आदि कार्य भी वे करती हैं। यदि हम कृषक मजदूरों की बात करें तो उनमें ज्यादातर महिलाएं ही शामिल है। आजकल शहरीकरण के दौर में पुरुषों के शहर चले जाने के पश्चात् खेती का जिम्मा महिलाओं ने ही ले रखा है मैत्रेयी कृष्णराज के अनुसार- ''वैश्वीकरण के दौर में कृषि क्षेत्र में हुए ज्यादातर परिवर्तनों ने किसानों के घरों, खासतौर पर महिलाओं को प्रभावित किया है और इनमें से ज्यादातर ऐसी महिलाएं हैं जो परिवार की अकेली या मुख्य कमाऊ सदस्य हैं। इसे हाल के दिनों में आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र में किसानों की बड़े पैमाने पर हो रही आत्महत्या की घटनाओं से भी जोड़ा जा सकता है, जहाँ अब ज्यादातर परिवारों में विधवाएँ ही परिवार चलाने का जिम्मा उठा रही हैं।''[36]

1.3 किसान और उनकी समस्याएं

आज हमारे देश में किसानों के समक्ष अनेक समस्याएं हैं। भारतीय कृषि परंपरागत कृषि थी। आजादी से पहले यहाँ पंरपरागत तरीके से खेती की जाती थीं, किंतु अंग्रेजों के भारत में प्रवेश के पश्चात इन्होंने यहां की कृषि के तौर तरीकों में भारी बदलाव किये। किसानों के सामने आज पहली समस्या बीज की आती है कि वे किस प्रकार के बीजों की बुआई अपने खेतों में करें। कृषि के शुरूआती दौर में किसान स्वयं अपने खेतों के बीज को ही अगले वर्ष के लिए बचाकर रख देते थे और उसी से वे फसल की बुआई करते थे इससे उन पर बीज खरीदने का अतिरिक्त बोझ नहीं पड़ता था और पैदावार भी अच्छी होती थी। एक किसान दूसरे किसान से अनाज के बदले भी बीज प्राप्त कर लेता था इस तरह आपसी सामंजस्य से वो अपनी खेती करते थे। जिन जगहों पर धान की पैदावार अच्छी होती थी वहाँ के किसानों के पास धान की कई किस्में होती थी। किंतु आज इस तरह के बीज समाप्त हो गये हैं। सरकार द्वारा खोली गई कई

संस्थाओं से और बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा अलग-अलग किस्म के बीज किसानों को बेचे जाते हैं । जी.एस. भल्ला के अनुसार- ‘‘भारतीय कृषि अनसुंधान परिषद तथा कृषि विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक ब्रीडर किस्म के बीज तैयार करते हैं। भारतीय बीज निगम तथा कुछ चयनित कृषि विश्वविद्यालय उच्च उत्पादक किस्मों के फाउंडेशन बीज उत्पादन करते हैं। इन बीजों का बहुगुणन तथा आपूर्ति राज्य बीज फार्मों, केंद्र सरकार के बीज फार्मों, कृषि के राज्य विभाग, निजी कम्पनियां, निजी बीज उत्पादकों तथा बीज उत्पादक सहकारी समितियों सहित कई एजेंसियों द्वारा किया जाता है।’’[37] सरकार द्वारा चलाए गई इन संस्थाओं से किसानों को बीज तो प्राप्त हो जाते है किंतु उसके लिए किसानों को अतिरिक्त मूल्य चुकाना पड़ता है। साथ ही इन बीजों से वो दोबारा अपने खेत की बुआई नहीं कर सकते हैं। जिससे इन्हें हर साल नए बीज खरीदने पड़ते हैं। इनके पास पर्याप्त मात्रा में धन भी नहीं होता है, जिससे ये कर्ज के बोझ से दबते चले जा रहे हैं। किसानों के सामने बीज की समस्या के साथ ही खाद की समस्या होती है। पहले वे जिन बीजों की बुआई खेत में करते थे, उनकी अच्छी पैदावार करने के लिए किसान खुद अपने घर पर बनाई हुई देसी खाद का इस्तेमाल करते थे। वे गोबर, खरपतवार, नीम, राख आदि के प्रयोग से खाद बनाते थे जिसमें उन्हें अलग से धन नहीं व्यय करना पड़ता था। कभी-कभी तो जिस समय खेत खाली रहते थे, वो ऐसी फसल उसमें बो देते थे। जिससे वह खेत में ही सड़ाकर खाद के रूप में इस्तेमाल करते थे। किंतु आज सरकार द्वारा अलग-अलग तरीके के रासायनिक खाद बनाए जा रहे हैं जैसे-यूरिया, पोटैशियम, फास्फोरस, जिंक आदि। सरकार द्वारा किसानों को दिये जाने वाले बीजों में उन्हें कई तरह के रसायनों का प्रयोग करना पड़ता है तभी उनकी पैदावार होती है। किन्तु ये रसायन खेत की उर्वरक शक्ति को कम कर देते हैं। कुछ सीमा तक तो खेत में पैदावार होती है, किंतु एक समय के बाद उनमें स्थिरता आ जाती है। साथ ही ये रसायन पर्यावरण के लिए भी हानिकारक होते हैं। जी.एस. भल्ला ने भारतीय कृषि आजादी के बाद पुस्तक में कहा है- ‘‘मिट्टी की गुणवत्ता के अतिरिक्त उर्वरकों के असंतुलित प्रयोग के कारण भारतीय मृदा में पोषक तत्वों की कमी हो गई है। मिट्टी में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी बढ़ती जा रही है,

जो पौधे के बिकास को बुरी तरह प्रभावित करती है तथा मिट्टी में कार्बनिक, जैविक पदार्थ में कमी लाकर फसलों द्वारा नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटैशियम के समुचित अवशोषण में हस्तक्षेप करती है।"[38] इस तरह के बीज और खाद के प्रयोग से किसानों पर खेती का खर्च बढ़ रहा है। साथ ही, इनसे उपजे अन्न स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं। आज लघु एवं सीमांत किसानों को इनसे ज्यादा नुकसान हो रहा है। उन्हें समय पर न तो बीज मिल पाते हैं और न ही खाद उपलब्ध हो पाते हैं, क्योंकि इन्हें यही नहीं पता होता कि बीज कहाँ पर वितरित किये जा रहे हैं और कहाँ पर उर्वरक मिल रहे हैं और उन पर सरकार कितने प्रतिशत की छूट दे रही है। इस तरह से ये किसान इधर-उधर चक्कर ही काटते रह जाते हैं और समय पर अपनी खेती भी नहीं कर पाते। इस तरह के बीज और खाद के प्रयोग से किसान के सामने सिंचाई की समस्या उत्पन्न हो रही है। सिंचाई के परंपरागत साधन अधिकांशतः समाप्त हो गये हैं। नहर, कुएं, तालाब आदि समाप्त हो रहे हैं। आरंभ में किसानों की सिंचाई तालाबों, नहरों, कुओं से हो जाती थीं और ज्यादातर खेती तो मानसून पर ही निर्भर रहती थी। अंग्रेजों ने भी सिंचाई के लिए नहरों, तालाबों का निर्माण कराया जिससे कृषि सिंचित भूमि साधनों में विस्तार हुआ। किंतु आज भी हमारे देश की कृषि का लगभग 60 प्रतिशत हिस्सा अभी भी वर्षा पर निर्भर है। आज खेतों में रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग ने सिंचाई की आवश्यकता बढ़ा दी है। इन बीजों और रसायनों के प्रयोग से फसल में पानी की अधिक सिंचाई करनी पड़ती है। देश में पानी का संकट बढ़ रहा है और किसान सिंचाई की समस्या से जूझ रहा है। उसके पास खुद के साधन तो होते नहीं इसलिए वह शुल्क देकर फसल की सिंचाई करता है। उनकी स्थिति इतनी अच्छी नहीं होती है कि वे टयूबवेल आदि लगवा सकें। इसके लिए उन्हें बार-बार दूसरों के यहाँ जाना पड़ता है। ऊपर से ग्रामीण क्षेत्र में बिजली की समस्या है। ग्रामीण क्षेत्र में बिजली के अभाव में भी किसान समय से खेतों की सिंचाई नहीं कर पाता और उसकी फसल बर्बाद हो जाती है।

किसानों की समस्याएं यहीं नहीं खत्म हो जाती है। समय-समय पर उन्हें प्राकृतिक आपदाओं का भी सामना करना पड़ता है। जैसे-अधिक बारिश होने से फसल का खराब होना या कभी-कभी सूखे से

फसल की बर्बादी, अकाल आदि भी किसान की बदतर स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं। आज हमारे देश में कई ऐसे राज्य हैं जहाँ पर अधिक वर्षा होती है। अत्यधिक वर्षा होने पर भी किसानों की फसलें बर्बाद होती हैं। बिहार से होकर कई नदियाँ गुजरती हैं जो हर साल बिहार में तबाही का कारण बनती है। अभी हाल में ही हमें केरल में बाढ़ का प्रकोप देखने को मिल रहा है। वहाँ के किसानों की सारी फसलें बाढ़ के कारण खराब हो चुकी हैं। हमारे किसानों के सामने कर्ज की समस्या सबसे बड़ी समस्या है। आज के समय में खाद और बीज के बढ़ते मूल्य ने किसानों को कर्ज में डुबो दिया दिया है। हमारे यहाँ कोई भी सरकार बनती है तो इसी वादे के साथ कि वह किसानों की स्थिति में सुधार ले आयेगी। लेकिन सरकार में बनने के बाद ही वह अपने वादे को भूल जाती है। महाराष्ट्र के एक सांसद को कृषि क्षेत्र में उनके अच्छे कार्य के लिए कोई पुरस्कार दिया जाता है, लेकिन सरकार में आने के बाद किसी कृषि प्रदर्शनी में-''किसान मरते हैं तो मरने दो, इनके लिए ज्यादा कुछ करने की जरूरत नहीं है किसानों की खुदकुशी से हमें पर कोई फर्क नहीं पड़ता।''[39] कहना उनकी मानसिकता को ही बयां करता है।

भारत के किसानों की बदतर स्थिति के लिए कई परिस्थितियाँ जिम्मेदार रही हैं। विदेशी शासकों ने यहाँ अपने उद्योग धन्धों के साथ यहाँ की कृषि में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने यहाँ अपने तरीके से अपने फायदे की कृषि करने के लिए किसानों को मजबूर कर दिया और इस काम में अपने ही देश के व्यापारी, साहूकार आदि ने उनका साथ दिया और कृषकों की स्थिति पहले से भी बदतर हो गई। अंग्रेज भारतीय किसानों को अपने मुनाफे एवं व्यापार के लिए कृषि करने पर बाध्य करते थे। सुमित सरकार के अनुसार-"मध्य बंगाल में नील की खेती मुख्यत: किसान स्वयं करते थे किंतु अनिच्छापूर्वक क्योंकि गोरे साहब उन्हें जबरन पेशगी रुपया देकर नील की खेती करने पर बाध्य करते थे। इस अनिच्छा कारण यह था कि इस खेती से उन्हें कम लाभ मिलता था जो अनिश्चित भी होता था, और फसल चक्र भी गड़बड़ा जाता था।"[40] अंग्रेजों ने भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना व्यापार के उद्देश्य से किया था। धीरे-धीरे भारत के हर उद्योग-धंधे और कृषि पर उन्होंने अपना कब्ज़ा जमा लिया था। इस कार्य में हमारे

ही देश के साहूकार और जमींदारों ने उनका साथ दिया। अंग्रेज व्यापार में प्राप्त मुनाफे का एक छोटा हिस्सा भारत के व्यापारियों एवं साहूकारों को भी देते थे। इसलिए अंग्रेजों के साथ-साथ यहाँ के महाजन और जमींदारों ने भी किसानों के शोषण में भी अपनी भूमिका निभाई। सुमित सरकार के अनुसार- "देश के विदेश व्यापार, जहाजरानी एवं बीमे के कारोबार पर वस्तुतः ब्रिटिश व्यापारिक प्रतिष्ठानों का पूर्ण नियन्त्रण हो चुका था अत: बढ़ते निर्यात से मिलने वाले लाभांश का एक बड़ा हिस्सा विदेशी फर्में हड़प लेती थी...। इसका एक गौण किंतु फिर भी अच्छा खासा भाग भारतीय व्यापारियों एवं महाजनों को जाता था। ये वे दलाल थे जो किसानों को आवश्यक अग्रिम राशि देकर उत्पादन पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लेते थे। ऐसी पेशगियों की आवश्यकता भी लगान के बोझ से जुड़ी हुई थी।"[41] अंग्रेजी राज में हमारे देश के किसानों की स्थिति और बदतर हो गयी थी। उसके सामने समस्याएं जैसे-जैसे आती गयीं, वैसे-वैसे वह कर्ज के जाल में फंसता गया। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक वह अपनी जमीन गिरवी रखने या बेचने पर मजबूर न हो जाए। साइमन रिपोर्ट में कहा गया था- ''अधिकांश किसान महाजन के कर्जदार हैं।''[42]

किसानों पर कर्ज बढ़ने के कई कारण हैं। एक तो शुरूआती दौर में जमींदारी व्यवस्था में किसानों से मालगुजारी वसूली जाती थी। किसान की पैदावार कम हुई या अधिक इससे जमींदार को कोई मतलब नहीं होता था। उन्हें अपने हिस्से की मालगुजारी देनी ही पड़ती थी। इसलिए दक्खिन के किसानों की मदद के लिए बनाए गए कानून में 1892 के कमीशन में कहा गया है कि-''इसमें कोई संदेह नहीं कि वर्तमान प्रथा के सख्त होने से ही ज्यादातर दक्खिन की रैयत नया कर्ज लेने पर मजबूर हुई है।''[43] हमारे यहाँ के अधिकांश किसान गरीबी का जीवन जीते हैं। उनके पास जमीन थोड़ी होती है जिससे उनका गुजारा होना मुश्किल होता है उनके पास खुद के शादी-ब्याह, तीज-त्योहार, मुकदमें, लगान देने और धार्मिक कार्यों आदि में खर्च करने के लिए भी पैसे नहीं होते हैं। जिसके कारण उन्हें कर्ज लेकर ही काम चलाना पड़ता है। उनकी आर्थिक स्थिति ही खराब है ऊपर से मालगुजारी वसूली और लगान में ही उनकी बची खुची

संपत्ति भी चली जाती है। रजनी पाम दत्त का कथन है-''कर्ज का मुख्य कारण किसानों की आम गरीबी है।''[44] कहना किसानों के यथार्थ को प्रतिबिंबित करता है। आज के दौर में पैदावार बढ़ाने के लिए अनेक तरह की लोक लुभावनी योजनाएं चलाई जा रही हैं। कृषि के लिए कर्ज देने वाली तमाम संस्थाएं अस्तित्व में हैं जिसके चक्कर में गरीब किसान आसानी से फंस जाता है। आजादी के इतने सालों बाद भी हमारे किसानों के लिए ऐसा कुछ नहीं किया गया, जिससे उनकी स्थिति में कुछ सुधार हो सके। आज भी वे कर्ज के लिए बैंक और महाजनों के पास घूमता रहते हैं और एक बार कर्ज लेने के बाद हमेशा के लिए उसी में फँसकर रह जाते हैं। 'सबलोग' पत्रिका में अपने लेख 'बदहाल किसान और लोकतंत्र की नींद' लेख में विजय गुप्त ने कहा है- ''किसान का अर्थशास्त्र आज भी बैंक, बाजार और सूदखोर महाजनों के बीच चकरघिन्नी की तरह घूमता हुआ है। महाजन सौ रुपये के बदले कई सौ रुपये वसूल लेता है। वसूली के हथियार से बैंक भी किसान के गले में गुलामी का पट्टा डाल देता है, और बाजार तो किसान का सब कुछ लूट लेता है।''[45] आज किसान खेती तो इसी उम्मीद से करता है कि फसल अच्छी हुई तो कर्ज चुका देंगे। अपने के बाकी काम कर लेंगे लेकिन, फसल अच्छी होने के बावजूद उसको कोई लाभ नहीं मिल पाता, क्योंकि सरकार उसका सही मूल्य ही नहीं तय कर पाती है। यह विचार करने योग्य बात है कि खेती तो किसान करता है और फसल का मूल्य सरकार तय करती है।

1.4 किसान और कृषि क्रांतियाँ

आजादी के बाद हमारे देश में कृषि की दशा बहुत ही खराब स्थिति में थी। विभाजन के पश्चात भारत में जमीन का बहुत बड़ा उपजाऊ भाग पाकिस्तान में चला गया। अंग्रेजों ने भी भारत का अच्छी तरह से दोहन किया। फिर सरकार की तरफ से कृषि दशा सुधारने के नए-नए प्रयास किये जाने लगे। देश में पारंपरिक कृषि व्यवस्था को समाप्त कर आधुनिक तकनीकि और नवीन संसाधनों द्वारा कृषि करने पर बल दिया जाने लगा। पारंपरिक कृषि यानि कि देशी खाद, हल, बैल आदि की सहायता से होने वाली कृषि। इनकी जगह रासायनिक खादों, बीजों, टैक्टर आदि की सहायता से कृषि की जाने लगी।

हरित क्रांति के जनक डॉ. नोरमान बोरलॉड हैं और भारत में इसको लाने का श्रेय एम.एस. स्वामीनाथन को है। सन 1968 में भारत में पहली बार 120 लाख टन गेहूँ से 170 लाख टन गेहूँ पैदा हुआ तो विलियम गाड ने इसे हरित क्रांति की संज्ञा दी। 1960 के दशक में मैक्सिको से लाए गये गेहूँ के बीजों द्वारा गेहूँ की नई प्रजातियाँ विकसित की गयीं जिनकी उपज बहुत अच्छी थी। हरित क्रांति के शुरूआती दौर में तो यहाँ कृषि की दशा बहुत अच्छी रही, किन्तु लगातार रासायनिक खादों की सहायता से उपज बढ़ाने से मिट्टी की उर्वरा शक्ति कम पड़ गयी और हरित क्रांति किसानों के लिए अभिशाप बन गयी। 'भारतीय कृषि प्रबंधन के दोष' लेख में रामनाथ शिवेन्दु के अनुसार- ''हरितक्रांति वस्तुतः संकर बीजों तथा रासायनिक खादों के भरपूर उपयोग पर आधारित वैज्ञानिक व औद्योगिक एक नयी कृषि प्रणाली थी जिसके द्वारा सपना दिखाया गया था कि खाद्यान्नों के उत्पादन में आश्चर्यजनक वृद्धि हो जायेगी जिससे किसानों को भी अधिकतम लाभ होगा। पर 1980 आते-आते तक हरितक्रांति की उपयोगिता कृषिभूमि को बंजर भूमि में बदलने वाली हो गयी। फिर महसूस किया गया कि हरितक्रांति से हमारी कृषि व्यवस्था को कुछ भी लाभ नहीं मिलने वाला।''[46] इस तरह से हरित क्रांति के शुरूआती दौर में कृषि को लाभ तो होता है किन्तु धीरे-धीरे इससे उपज घटने लगती है फिर दूसरी हरित क्रांति के द्वारा देश में जी.एम. (जेनेटिकली मोडिफाइड) बीजों को कृषि के लिए अच्छा बताया जाने लगा। इस हरित क्रांति ने भारत में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बीजों को बढ़ावा दिया।

भारत में 'श्वेत क्रांति' 1964-1965 में 'सघन पशु विकास कार्यक्रम' के अंतर्गत शुरू की गयी। इस क्रांति का उद्देश्य भारत में दुग्ध उत्पादन को बढ़ावा देना था। यह क्रांति तीन चरणों में संपन्न हुई। पहला चरण 1970 से 1995, दूसरा चरण 1978-1985 तक, तीसरा चरण 1985 से 1995 तक। हमारे देश में हमेशा से पशुओं का पालन किया जाता रहा है, किन्तु 'श्वेत क्रांति' के माध्यम से पशुओं की नई नस्लों को भारत में बढ़ावा मिला तमाम डेयरी फार्म खाले गये जिससे किसान अपने दुग्ध व्यवसाय को आसानी से कर सकें।

देश में खाद्य तेल और तिलहन फसलों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा जो नई नीतियाँ चलाई गयीं, उसे 'पीली क्रांति' की संज्ञा दी गई। इस क्रांति का प्रभाव भारत में लगभग सभी राज्यों में पड़ा, तिलहन उत्पादन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 1986 में तिलहन प्रौद्योगिकी मिशन भी आरंभ किया गया। इस तरह से 'पीली क्रांति' से हमारे देश में तेल एवं तिल उत्पादन को बढ़ावा मिला।

हमारे देश में आलू के उत्पादन में वृद्धि के लिए 'गोल क्रांति' की शुरूआत की गयी। हम इतिहास में देखे तो पता चलता है कि भारत में 16वीं सदी में आलू पुर्तगाल से लाया गया था। यह क्रांन्ति 'केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान' के प्रयासों के फलस्वरूप सफल हुई। इस क्रांति से भारत का आलू उत्पादन में महत्वपूर्ण स्थान है।

मछली उत्पादन में वृद्धि के लिए सरकार द्वारा चलाई गई नई योजनाएं 'नीली क्रांति' कहलाई। स्वतंत्रता के पश्चात हमारे देश की कृषि व्यवस्था बहुत ही खराब स्थिति में चल रही थी। फसलों के लिए उर्वरकों की कमी बढ़ती ही जा रही थी। इसी कारण उत्पादन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सरकार ने नए किस्म के रसायनों को बढ़ावा देने के लिए जो प्रयास किये वो 'धूसर क्रांति' कहलाई। भारत में मुर्गी पालन के व्यवसाय एवं उनके मांस एवं अण्डे की उत्पादकता को बढ़ाने के उद्देश्य से 'रजत क्रांति' की शुरूआत की गयी।

भारत में फलों एवं सब्जियों के उत्पादन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 'सुनहरी क्रांति' की शुरूआत की गयी। 'सुनहरी क्रांति' का मुख्य उद्देश्य सेब उत्पादन को बढ़ावा देना है। इस क्रांति के आने से हमारे यहाँ फसल सब्जियां एवं मसालों के उत्पादन में वृद्धि हुई है। 'इद्रधनुषी क्रांति' का उद्देश्य भारत में समग्र क्रांति को साथ लेकर चलने का था। सन 2002 में कृषि मंत्री रहे नीतिश कुमार ने भारत में 'नई राष्ट्रीय कृषि नीति' लागू की। इस नीति का उद्देश्य था भारत में सभी क्रांति के विकास को बढ़ावा देने का था।

1.5 किसान एवं कृषि नीतियाँ

स्वतंत्रता के पश्चात भारत की कृषि व्यवस्था में नया मोड़ आया। विभाजन के पश्चात भारत की भूमि का उपजाऊ हिस्सा पाकिस्तान चला गया | चूंकि भारत की जनसंख्या का 75% हिस्सा कृषि कार्यों में संलग्न है और यदि इस स्थिति में कृषि की स्थिति ही खराब है तो यह किसी भी देश के लिए चिंताजनक परिस्थिति है। अंग्रेजों के जाने के पश्चात देश में सरकार की तरफ से कृषि दशा को सुधारने के अनेक प्रयास किये गए।

क) पंचवर्षीय योजनाएं

भारत सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951 से शुरू किया। यह योजना प्रमुख रूप से कृषि विकास पर ही केन्द्रित थी। 'प्रथम योजना' के समय कृषि की स्थिति अत्यंत खराब थी। किसानों के पास जमीनें बहुत कम थीं और जो थी भी वह भी अलग-अलग जगह छोटे टुकड़ो में, न तो उनके पास पैसा था और न ही कृषि की ठीक जानकारी। न वो अच्छे बीज खरीद सकते थे, न खाद। सिंचाई के लिए भी वे मानसून पर निर्भर थे। सरकार की तरफ से इनकी दशा सुधारने के लिए नई-नई योजनाएं चलाई गईं। किसानों के लिए अनेक प्रकार के उन्नत किस्म के बीज उपलब्ध कराए गए एवं उनको जागरूक करने के अनेक प्रयास किए गए। 'दूसरी पंचवर्षीय योजना' मुख्यतः उद्योग पर केन्द्रित थी। किन्तु शीघ्र ही सरकार को यह ज्ञात हो गया कि कृषि की दशा में सुधार लाए बिना भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति अच्छी नहीं हो सकती। फिर भी दूसरी योजना के दौरान भी कृषि व्यवस्था में कुछ सुधार हुए। 'तीसरी पंचवर्षीय योजना' में भी कृषि विकास पर जोर दिये गये। इस योजना से सबको उम्मीद थी कि इससे देश में 'हरित क्रांति' आयेगी किन्तु 1965-66 में सूखे के कारण कृषि पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। कहा जाता है कि प्रथम तीन योजनाओं (1950-51 से 1964-65 तक) ने कृषि की दशा में महत्वपूर्ण सुधार किए। इस संबंध में मैत्रेयी कृष्णराज का कहना है कि- ''पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि अनुसंधान, शिक्षा

और इसके विस्तार को सुदृढ़ करने के अलावा खेती से जुड़ी जरूरी चीजों मसलन बीज खाद और बिजली के उत्पादन के लिए कई कदम उठाए गए।"[47]

'चौथी पंचवर्षीय योजना' में इस बात पर बल दिया गया कि किसानों एवं कृषि के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनाई जाए। सरकार द्वारा चलायी गई योजनाओं और नीतियों का प्रचार किया जाए किन्तु यह योजना सफल न हो सकी। 'पांचवी पंचवर्षीय योजना' में कृषि की दशा में सुधार लाने के लिए सरकार द्वारा कृषि पर 8,740 करोड़ रूपये का व्यय किया गया। योजना के बीच में ही देश में आपातकाल की घोषणा कर दी गयी और यह योजना बीच में ही समाप्त कर दी गयी।

'छठी पंचवर्षीय योजना' या 'दूसरी हरित क्रांति' की शुरूआत कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के उद्देश्य से की गयी थी। पहली हरित क्रांति की विफलता के कारण ही दूसरी हरित क्रांति योजना को लागू किया गया। 'दूसरी हरित क्रांति' के बारे में रामनाथ शिवेंद्र ने अपने लेख 'भारतीय कृषि प्रबंधन के दोष' में स्पष्ट किया है- "हरित क्रांति-1 की विफलता के बाद अचानक बायोटेक्नोलॉजी व जीन इंजीनियरी के नगाड़े पीटे जाने लगे। फिर हमारी कृषि व्यवस्था का हरित क्रांति-2 की तरफ धकेला जाने लगा और किसानों को समझाया जाने लगा कि अब कृषि उत्पादन के लिए आवश्यक हो गया है जी.एम. (जेनेटिकली मोडिफाइड) बीजों का प्रयोग किया जाने लगा। बायोटेक कम्पनियों ने सौ से अधिक किस्म के बीजों का जी.एम. संस्करण भी बना लिया है।"[48] पहली हरित क्रांति आने का कारण चावल एवं गेहूँ के उन्नत किस्म के बीज थे तो दूसरी हरित क्रांति में सरकार द्वारा कृषि नीतियों एवं सेवाओं का लाभ कृषकों तक ठीक प्रकार से पंहुचा। पहली हरित क्रांति का विस्तार पंजाब-हरियाणा, पश्चिमी उत्तर-प्रदेश तक ही सीमित रह गया था, दूसरी हरित ने क्रांति प.बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्य-प्रदेश आदि राज्यों तक अपना विस्तार किया। छठी योजना में सरकार द्वारा कृषि के प्रति निर्धारित लक्ष्य को नहीं प्राप्त किया जा सका।

'सातवीं पंचवर्षीय योजना' में कृषि संबंधी अनेक प्रोजेक्ट सरकार द्वारा तैयार किये गये। इस योजना में सिर्फ रूई के उत्पादन को छोड़ और किसी क्षेत्र में निर्धारित लक्ष्य नहीं प्राप्त किया जा सका।

'आठवीं पंचवर्षीय योजना' में कृषि लक्ष्यों की प्राप्ति हुई। इस योजना में तिलहन, गन्ना, रूई आदि का उत्पादन निर्धारित लक्ष्य से अधिक ही रहा। 'नौंवी पंचवर्षीय योजना' को कृषि उत्पादन की दृष्टि से सफल नहीं माना जाता है।

'दसवीं पंचवर्षीय योजना' का भारत की अर्थव्यवस्था में अधिक महत्व है। इस योजना में अब तक की सभी योजनाओं का मूल्यांकन किया गया। इस योजना में प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग पर बल दिया गया। इस योजना ने अधिक कीमत वाली फसलों के उत्पादन पर बल दिया। इस योजना में फल, सब्जियों, वृक्षा रोपण, पशुपालन आदि पर बल दिया गया। इस योजना का महत्व इसलिए भी अधिक है कि इसने सरकार द्वारा चलाई गई 'राष्ट्रीय कृषि नीति'(2000) के आधार पर भी कार्य किया। इस तरह से 'राष्ट्रीय कृषि नीति' का लक्ष्य अधिक से अधिक कृषि उपज थी। इससे देश में ठेके की खेती, व्यापारिक खेती को बढ़ावा दिया गया। भारत में विदेशी कंपनियों को खेती के लिए छूट दे दी गई। इसी नीति के तहत भारत सरकार द्वारा किसानों को कृषि उपकरणों पर दी जाने वाली सब्सिडी को भी कम कर दिया गया। 'समयांतर' पत्रिका के अगस्त, 2017 के अंक में 'जन संघर्ष समन्वय समिति' ने अपने विचार प्रकट किए हैं- "भारत सरकार द्वारा किसानों को खाद, बीज, कीटनाशक दवा, कृषि उपकरण, बिजली, डीजल पर जो छूट दी जा रही है उसे धीरे-धीरे समाप्त किया जा रहा है इसके कारण कृषि में लागत बढ़ रही है और किसानों को उनकी पैदावार का उचित मूल्य भी नहीं मिल रहा है जिसके कारण उनकी खेती घाटे में जा रही है।"[49] इस तरह से सरकार की 'राष्ट्रीय कृषि नीति' ने इस तरह की नीति अपनाई कि देश में गरीब किसानों एवं मजदूरों की स्थिति और भी दयनीय अवस्था में पहुँच गई। 'जन संघर्ष समन्वय समिति' का विचार है कि- ''नई राष्ट्रीय कृषि नीति' का परिणाम यह हुआ कि किसानों और कृषि मजदूरों की बची खुची उम्मीद भी इस 'राष्ट्रीय कृषि नीति के भेंट चढ़ गई।"[50]

'ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना' में भी तकनीकि कृषि पर बल दिया गया। इस योजना के तहत आधुनिकतम कृषि बाजारों का विकास, समुचित जल प्रबंधन की व्यवस्था, सिंचाई के उपयुक्त साधन

उपलब्ध कराना, वर्षा के जल संरक्षण आदि कार्यों को करने पर बल दिया गया। मैत्रेयी कृष्णराज एवं अरुणा कांची के अनुसार- "ग्यारहवीं योजना के लिए कृषि के दृष्टिकोण पत्र में करों और शुल्कों को विरूपण-रहित और अंतर्राष्ट्रीय मूल्यों के अनुरूप प्रतिस्पर्धी बनाने को प्राथमिकता दी गयी है। इसमें विशेष आर्थिक क्षेत्रों और विशेष आर्थिक प्रान्त बनाये जाने का समर्थन किया गया है। और जिन मुद्दों पर जोर दिया गया है वो हैं पर्यावरणीय स्थिरता, हवा और पानी की गुणवत्ता में सुधार ठोस-कूड़ा प्रबंधन को बढ़ावा, जैव विवधता का संरक्षण, भूमि के क्षरण को कम करना, हरित क्षेत्र में वृद्धि और संयुक्त वन प्रबन्धन।"[51]

ख) नई मूल्य निर्धारण योजना

सन 2004 में यूरिया को कम मूल्य पर उत्पादन करने एवं भुगतान करने के लिए सरकार के सलाह के लिए एक कार्यकारी दल का गठन किया गया था।

ग) सहकारी ऋण व्यवस्था

सन 1982 में भारत सरकार ने संसद के कानून द्वारा 'नाबार्ड' नामक एक संस्था का निर्माण किया जिसका कार्य कृषि संबंधी गतिविधियों को प्रोत्साहन करना तथा विकास के लिए ऋण एवं अन्य सुविधाएं जनता को उपलब्ध कराना। इस योजना का पुनर्निर्माण 2004 में वैद्यनाथन की अध्यक्षता में सहकारी ऋण व्यवस्था के लिए एक समिति गठित की गई। इसका उद्देश्य ग्रामीण सहकारी संस्थानों के कार्यों में सुधार लाना है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में खोले गये। जिससे समाज में कमजोर वर्ग को ऋण लेने में सुविधा हो।

घ) किसान क्रेडिट कार्ड योजना

किसान क्रेडिट कार्ड योजना का लक्ष्य किसानों को आसानी से कृषि करने के लिए कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराना है। किसान इस कार्ड का उपयोग कृषि के लिए बीज खरीदने, खाद, कीटनाशक

आदि खरीदने में कर सकते हैं। जी.एस. भल्ला के अनुसार- ''भूमि के आकार, फसल चक्र, वित्त प्रबंधन का पैमाना इत्यादि के आधार पर ऋण की सीमाएं तय की जाती हैं तथा पूरे वर्ष की प्रत्येक वित्तीय आवश्यकताओं तथा फसल उत्पादन से जुड़ी सहायक गतिविधियाँ जैसे कृषि उपकरणों। औजारों का रख-रखाव, बिजली का खर्च इत्यादि का आकलन किसान क्रेडिट कार्ड के अंतर्गत ऋण की सीमाओं को निश्चित करने के उद्देश्य से किया जाता है।''[52]

ङ) कृषि बीमा: राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना

1999-2000 रबी के फसल के समय इस योजना को प्रारंभ किया गया था। इस योजना का उद्देश्य किसानों को संकट के समय सहायता प्रदान करना है। कई बार ऐसा होता है किसान सारे जोखिम उठाकर अपनी फसल तैयार करता है। प्राकृतिक आपदा या टिड्डी दलों के कारण उनकी फसलें पूरी तरह नष्ट हो जाती हैं। इसी नुकसान के समय में किसान की मदद करने के उद्देश्य से 'फसल बीमा योजना' की शुरुआत की गयी। जी.एस भल्ला के अनुसार- "इस योजना का उद्देश्य प्राकृतिक आपदा, जानवर और बीमारी के कारण किसी भी उल्लेखित फसल में हुई हानि के लिए बीमा तथा वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना, विशेषकर आपदा के वर्षों में कृषि आय को स्थायित्व देने में सहायता करना था। यह योजना सभी किसानों (ऋण लेने और न लेने वाले दोनों) के लिए है तथा जोत के आकार से इस योजना के लाभ का कोई सम्बन्ध नहीं है।"[53]

च) त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम

यह कार्यक्रम 1996-1997 में सिंचाई परियोजनाओं को पूरा करने के लिए शुरू किया गया। इस परियोजना पर सरकार ने लगभग 500 करोड़ रुपये व्यय किये। इसका लक्ष्य किसानों को नियमित रूप से समय पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध कराना था किंतु यह परियोजना सफल न हो सकी।

छ) ग्रामीण आधारभूत संरचना विकास कोष

इस योजना की शुरूआत 1995-96 में नाबार्ड के संरक्षण में हुई। इसका उद्देश्य राज्य सरकारों को सिंचाई, मृदा संरक्षण आदि के लिए ऋण प्रदान करना है। इस प्रकार सरकार ने कृषि को बढ़ावा देने के लिए अनेक कृषि अनुसंधान खोले। किसानों विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों को योजनाओं से अवगत कराने के तमाम तरीके अपनाएं। इस संबंध में जी.एस.भल्ला का कथन है कि- ''कृषि को बढ़ावा देने वाले अन्य कदमों में राष्ट्रीय बीज निगम राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम, कृषि पुनर्वित निगम तथा केन्द्र एवं राज्यों के कई अन्य निगम जैसी नई संस्थाओं की स्थापना सम्मिलित थे, जिनका उद्देश्य किसानों को उन्नत बीज रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, औजार एवं मशीनरी, सिंचाई सुविधाएं तथा कृषि ऋण की आपूर्ति सुनिश्चित कराना था।''[54]

1.6 किसान और किसान आंदोलन

हमारे देश में हमेशा से किसानों का शोषण होता रहा है। प्राचीनकाल हो मध्यकाल हो या आधुनिक काल हमेशा उनके साथ कठोर व्यवहार किया जाता रहा है। प्राचीन भारत में भी किसानों को भारी मात्रा में लगान अपने सामंतों को देना पड़ता था। जमीन पर राजा और सामंतों का ही अधिकार होता था। वो जब चाहे उसे हड़प सकता था। मध्यकाल में भी यही सामंती व्यवस्था थी और इस समय भी कृषकों से मनमाने तरीके से लगान वसूली की जाती थी। किसानों को लगान समय पर ही चुकाना पड़ता था। नहीं तो जमीन छिन जाने का भय निरंतर बना रहता था। फसल अच्छी हो या खराब उसे तो लगान अदा ही करना होता था। 'पल-प्रतिपल' पत्रिका के अंक 83 में उल्लेख किया गया है कि- ''किसानों की समस्याओं की ओर कोई ध्यान नहीं देता था। किसानों को उपज का तीसरा हिस्सा लगान के रूप में राज्य को देना होता था, जो बहुत ज्यादा था। जब किसान नहीं दे पाते थे तो फौज की मदद से उनसे वसूली की जाती थी।''[55] इस तरह से यदि किसान अपनी उपज का तीन हिस्सा लगान दे देंगे तो उनके पास क्या बचेगा, क्योंकि खेती का खर्च भी उन्हें ही उठाना पड़ता था। राजा या सामंतों के व्यक्तिगत कार्यों में भी

उन्हें बेगार करनी पड़ती थी। इस तरह से किसानों के शोषण करने के कई तरीके राजा और सामंतों के पास होते थे। 'पल-प्रतिपल' पत्रिका में उल्लेखित है- ''करों की अदायगी के अलावा किसानों को मुख्यतः किलों और नगरों के निर्माण में राज्य के लिए बेगार भी करनी पड़ती थी। इस बात का फायदा वह सामंत खुलकर उठाते थे और दिनों-दिन और ज्यादा शक्तिशाली भू-स्वामी होते जा रहे थें। ऐसे में कृषकों के दिलों में दमन के प्रति विक्षोभ का होना लाजमी था।''[56]

इस तरह से यदि हम देखें तो मध्यकाल में मुगल शासन के दौरान ही कृषकों के मन में शोषण के खिलाफ रोष पैदा होने लगा था। यदि हम पहले कृषक विद्रोह की बात करें तो वह हमें 1419 में ही मिलता है। यह विद्रोह सारंग खाँ के नेतृत्व में हुआ- ''जिसे सुल्तानों के चारक 'बेअक्स रिआया' और 'जाहिलों' का बलवा' बताते रहे।''[57] सारंग खाँ के नेतृत्व ने इस आंदोलन को भड़काया उसके पास किसानों का समूह एकत्रित होने लगा और अंत में खिज्र खाँ की सेना ने इस आंदोलन को दबा दिया। सारंग खां पकड़ा गया और उसकी हत्या कर दी गई। ऐसा ही दूसरा विद्रोह हमें मुगलकाल में अब्दुल्ला भट्टी का दिखाई देता है, जिसके दादा और पिता बादशाह अकबर के खिलाफ थे। उनकी मत्यु के बाद अब्दुल्ला ने उनकी लड़ाई खुद अपने हाथ में ले ली। वह लाहौर से दिल्ली जाने वाली रसद को लूट कर गरीबों में बांट देता था। अकबर ने अब्दुल्ला को मारने के लिए कई बार अपने सैनिक भेजें लेकिन वह बच जाता था। आज भी पूरा पंजाब उस पर गर्व करता है और उसी की याद में लोहड़ी का त्योहार मनाते हैं। अब्दुल्ला भट्टी के योगदान का उल्लेख 'पल-प्रतिपल' के किसान अंक में भी मिलता है- ''वह कृषि प्रधान देश का एक कृषक पुत्र था, जो मुगलों से उसी तरह नफरत करता था जैसे सारा पंजाब करता था। उसकी नजरों में मुगल बाहरी थे, जो हमारे सिर पर आ बैठे थे।''[58]

इस तरह से किसानों का शोषण होना हमारे देश में एक परंपरा सी बन गई है। अंग्रेजों ने यह परंपरा निभाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हमारे देश के प्राचीन धर्म पुराण ग्रंथों में भी किसानों के शोषण की गाथा मिलती है। मनृस्मृति में कहा गया है-''जैसे मधुमक्खी जोंक या गाय का बछड़ा अपना

भोजन पाता है, उसी तरह राजा भी अपने राज्य से साधारण कर लेता है। सोने और पशुओं में जो बढ़ती हो, उसका पांचवा हिस्सा राजा का होगा। फसल का छठा, आठवां या बारहवां हिस्सा राजा ले सकता है। युद्ध काल में कोई क्षत्रिय राजा फसल का चौथाई हिस्सा भी ले ले और प्रजा की शक्ति भर रक्षा करे तो उसे दोष नहीं दिया जाएगा।''[59] इस तरह से जिस देश की संस्कृति एवं परंपरा में ही किसानों के शोषण को मान्यता मिली हो, वहां आमजन शोषित हुए बगैर कैसे रह सकता है। अंग्रेज किसानों के साथ पशुओं जैसा व्यवहार करते थे। उन्होंने यहां के किसानों का इस तरह से शोषण किया कि गरीबी एवं दुर्दशा उनका भाग्य ही बन गई। हमारे देश के जमींदार, साहूकार, महाजनों ने भी अंग्रेजों को खुश करने के लिए अपने ही देश के किसानों का भरपूर शोषण किया। किसानों से दिन-रात काम लिया जाता और मजूरी कम दी जाती बेगार भी कराए जाते। उनके पास अपना और अपने परिवार का पेट भरने के लिए भी अन्न नहीं होता था। विवश किसान महाजनों से कर्ज लेने पहुंच जाता था। यहां से उनकी दशा और खराब हो जाती थी, वो जीवनपर्यन्त महाजनों से लिए कर्ज का ब्याज चुकाते रह जाते। मृत्यु के पश्चात यही कर्ज वो आगे आने वाली पीढ़ियों पर छोड़ जाते थे। इस प्रकार महाजन उन्हें अपना दास बना लेता था। इस तरह से वर्षों से पीड़ित किसानों के हदय में विद्रोह का भाव धीरे-धीरे जन्म लेने लगा। यही आगे चलकर आंदोलन में परिवर्तित हो गया। किसान अपने शोषण के खिलाफ लड़ने की तैयारी करने लगे। उन्होंने आपस में संगठन बनाना शुरू किया। इस तरह से गाँव में होने वाली किसान सभाएं अपने जिलों की सभाओं से जुड़ गई। 1936 में पहली 'अखिल भारतीय किसान सभा' की स्थापना हुई। इस तरह से किसान सभाओं के माध्यम से हजारों किसान संगठित हो अपने शोषण के खिलाफ आंदोलन छेड़ने की तैयारी करने लगे। यदि हम 1857 की बात करें तो उसमें भी हमारे देश के किसानों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। यदि किसान आंदोलन की बात करें तो यह हमारे देश में बहुत पहले से ही शुरू हो चुका था।

1.6.1 स्वतंत्रता से पूर्व किसान आंदोलन

स्वतंत्रता से पूर्व किसानों द्वारा अपनी समस्याओं को लेकर जो आंदोलन किए गए वे भिन्न-भिन्न रूपों में हमारे सामने आते हैं।

क) सन्यासी विद्रोह

किसानों द्वारा किया जाने वाला यह विद्रोह अंग्रेजी शासन और भारतीय जमींदारों के खिलाफ पहला विद्रोह था। यह विद्रोह 1763 से 1800 ई. तक चला। इस संबंध में 'कृषि, कृषकों की आवश्यकता बनाम विवशता कृषक आंदोलन के आइने में' लेख में डॉ. द्वारिका प्रसाद चंद्रवंशी का कथन है कि- ''इस विद्रोह ने भारतीय कृषक समाज में भूचला ला दिया। सन्यासी धार्मिक भिक्षु थे। इन विद्रोहियों का पहला आक्रमण ढाका की ईस्ट इंडिया की कोठी पर हुआ। इस विद्रोह ने अंग्रेजों के दांत खट्टे कर दिये। इसके प्रसिद्ध नेता मजनू शाह, मूसा शाह, भवानी पाठक, देवी चौधरानी आदि थे। इस तरह सन्यासी विद्रोह किसान आंदोलन की ऐसी मिशाल थी जिसने अंग्रेजों और देसी जमींदारों के छक्के छुड़ा दिये।''[60] सन्यासी विद्रोह के बाद ही 1766 में बंगाल और बिहार के कुछ जिलों में 'चुनार विद्रोह' की शुरूआत हुई। यह विद्रोह 1772 तक ही चलाकर स्थगित कर दिया गया और पुनः यह विद्रोह 1816 तक चला।

ख) रंगपुर किसान विद्रोह

इसकी शुरूआत 1783 ई. में हुई। यह आंदोलन रंगपुर में जमींदार देवीसिंह के अत्याचार के खिलाफ किया गया। देवीसिंह अपने पास के छोटे किसानों का शोषण मननाने तरीके से करता था, जिससे सारे किसानों ने उसके खिलाफ विद्रोह छेड़ दिया।

ग) संथाल विद्रोह

यह विद्रोह 1855-56 में हुआ। आदिवासियों द्वारा किया गया यह विद्रोह शोषण के खिलाफ था उन दिनों भागलपुर से राजमहल के बीच का क्षेत्र 'दामन-ए-कोह' के नाम से प्रसिद्ध था और यहाँ पर

संथाल जनजातियाँ प्रमुख रूप से बसती थी। इनसे इनकी जमीनें छीनी जा रही थीं। इनका मनमाने तरीकों से शोषण किया जा रहा था जिससे खिन्न होकर इन्होंने आन्दोलन छेड़ दिया। इनके आंन्दोलन करने के कारण का जिक्र 'कलक्ता रिव्यू' में इस प्रकार था- ''जमींदार, पुलिस, राजस्व विभाग और अदालतों ने संथालो पर बेइंतहां जुल्म ढाए। उनकी जमीन जायदाद छीन ली। हर कदम पर संथालों को अपमानित किया जाता था और मारा-पीटा जाता था। संथालों को कर्ज देकर 50 से 500 फीसदी की दर से ब्याज बसूला जाता था। धनी और ताकतवर लोग जब मन में आता था, मेहनतकश संथालों को उजाड़ देते थे। उनकी खड़ी फसलों पर हाथी दौड़ा दिये जाते थे। यह अत्याचार आम बात हो गई थी। दिकू और सरकारी कर्मचारी भी संथालो की निगाह में अत्याचारी थे। ये लोग संथालों से बेगार कराते थे। चोरी करना, झूठ बोलना और शराब पीना इनकी आदत सी बन गई थी।''[61] आदिवासी किसान आंदोलनों में इसके अलावा 1879 में रंपा आदिवासियों द्वारा मनसबदारों के खिलाफ आंदोलन किया गया।

घ) बिरसा मुंडा विद्रोह

यह आंदोलन 1899-1900 तक चला। बिरसा का जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ था जो बटाई पर खेती किया करता था। उन दिनों आदिवासी इलाकों में सामूहिक खेती का प्रचलन था किन्तु जमींदारों और जागीदारों ने उनकी इस परंपरा को तोड़ दिया इससे आदिवासी भड़क उठे और बिरसा मुद्रा के नेतृत्व में यह आंदोलन चल पड़ा बिरसा ने कहा-''दिकुओं से अब हमारी लड़ाई होगी और खून से जमीन इस तरह लाल होगी जैसे लाल झंडा।''[62] और यह सच भी हुआ बहुत से आदिवासी इस आंदोलन में मारे गये और अन्त में बिरसा को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया जहाँ उसकी मृत्यु हो गई।

ङ) नील आंदोलन

यह आंदोलन 1859-60 के बीच चला। यह आंदोलन बंगाल में हुआ। बंगाल में किसानों को जबरदस्ती नील की खेती करने पर मजबूर किया जाता था जबकि किसान वहाँ पर धान की खेती करना चाहते थे। दूसरा कारण उन्हें नील का दाम भी बहुत कम दिया जाता था। इस संदर्भ में बिपिन चन्द्र का

कथन है- ''सारे झगड़े की जड़ यह है कि नील उत्पादक बिना पैसा दिए ही रैयतों को नील की खेती करने पर मजबूर करते हैं।''[63] यदि किसान नील की खेती करने से इनकार करते थे तो किसानों का अपहरण, उन्हें कोड़े मारना, उनके घर की औरतों और बच्चों की पिटाई, उनकी फसलों में आग लगाना आदि अत्याचार उन पर किए जाते थे। 1959 में कलारोवा के डिप्टी मजिस्ट्रेट हेम चंडाकर ने एक सरकारी आदेश को पढ़ने में थोड़ी भूल कर दी और वह फरमान ही बदल गया। विपिन चंद्र के अनुसार- ''नील उगाने वाले रैयतों से संबंधित विवादों में जमीन पर रैयतों का कब्जा रहेगा और वे उस पर अपनी मरजी की फसल उगा सकेंगे। पुलिस की यह जिम्मेदारी है कि कोई नील उत्पादक या अन्य कोई व्यक्ति रैयतों के मामले में हस्तक्षेप न करने पाये।''[64] किंतु इस आदेश पर कोई अमल नहीं किया गया और किसानों का शोषण पूर्ववत जारी रहा जिससे किसानों ने क्रोधित हो नील की खेती बंद कर दिया और शासन के खिलाफ जंग छेड़ दी। इस आंदोलन के पश्चात बंगाल में नील की खेती बंद हो गई।

च) पाबना विद्रोह

यह आंदोलन 1872 में बंगाल में हुआ। इस आंदोलन का कारण था बंगाल के जमींदारों ने लगान की दरें ज्यादा वसूलनी शुरू कर दी जबकि कानून में उसकी एक सीमा तय की गयी थी जिससे सारे किसान संगठित होकर आंदोलन किए। यह आंदोलन सफल हुआ, क्योंकि किसानों ने सिर्फ लगान की दरें उचित मात्रा में लागू करने की माँग की थी।

छ) दक्कन विद्रोह

यह आंदोलन महाराष्ट्र के पूना और अहमदनगर जिलों में चला। यहां रैयतवारी प्रथा लागू की गई थी जिसमें किसानों से सीधे लगान वसूली की जाती थी, किन्तु किसान महाजन से कर्ज लिए बगैर लगान चुकाने की स्थिति में नहीं थे। जमींदारों और किसानों में तनाव का कारण यह हुआ कि अमेरिकी गृहयुद्ध के स्थगित होने पर कपास की निर्यात में मंदी आई और उसकी कीमतें गिर गईं, जिससे किसानों की स्थिति

बहुत ही दयनीय हो गई। वह लगान चुकाने की स्थिति में नहीं था, ऊपर से महाजनों द्वारा उनका शोषण भी किया जाता था, जिससे तंग आकर सारे किसानों ने महाजनों का बहिष्कार करना शुरू कर दिया।

ज) तेभागा किसान आंदोलन

1946 से 1947 के बीच बंगाल में चले इस आंदोलन का कारण जमींदारी प्रथा के शोषण एवं अत्याचार का विरोध करना था। इस आंदोलन का नेतृत्व बंगाल 'प्रांतीय किसान सभा' ने किया। सभा के कार्यकर्ता, जमींदारों को सबक सिखाने के लिए जबरदस्ती खेतों में जाकर धान काटने लगे। इस आंदोलन में अनेक किसानों की हत्याएं हुईं, किंतु आंदोलन सफल हुआ इस आंदोलन के बारे में क्रिलियन सिग्रिस्ट लिखते हैं- ''पहली बार जुझारू आंदोलन ने शासक वर्गों को इस विचार के लिए बाध्य कर दिया कि देहातों में बढ़ते हुए असंतोष एवं विद्रोह का मुकाबला सुधारों से ही किया जा सकता है।''[65]

इन किसान आंदोलनों के अलावा भी राजस्थान में मेर विद्रोह, भील विद्रोह, मीणा विद्रोह आदि भी शोषण के खिलाफ हुए। बिहार में सन 1917 में चंपारण सत्याग्रह के समय गांधी जी ने कहा था- ''हमें किसान ही मुक्ति दिला सकते हैं, वकीलों, डॉक्टरों या धनी जमींदारों के बूते की यह बात नहीं।''[66] चंपारण में अंग्रेजों द्वारा किसानों से जबरदस्ती भूमि के तीन भाग पर नील की खेती कराई जाती थी। राजकुमार शुक्ल के प्रयासों ने गाँधी जी को चंपारण जाने पर मजबूर कर दिया और गांधी जी ने इस प्रथा को समाप्त करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1936 में किसानों को संगठित एवं जागरूक करने के लिए 'अखिल भारतीय किसान सभा' की स्थापना की गई। इस सभा की कार्यवाही के पहले दिन ही इसमें करीब 20 हजार किसानों ने अपनी भागीदारी दी। 1938 में अखिल भारतीय किसान सभा' का तीसरा अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में किसानों को जमींदारी प्रथा के खिलाफ लड़ने के लिए प्रेरित किया गया। 1939 में सभा का तीसरा अधिवेशन हुआ। 1940 में पांचवा अधिवेशन हुआ। 1948 में किसान सभा के अधिवेशन के बारे में सहजानंद सरस्वती अपनी पुस्तक 'महारूद्र का महातांडव' में कहते हैं- ''अर्द्ध र्सवहारा या खेत मजदूर ही जिनके पास या तो कुछ भी जमीन नहीं है या बहुत थोड़ी है और

टुटपुंजिए खेतिहर जो अपनी जमीन से किसी तरह काम चलाते हैं, गुजर-बसर करते हैं यही दो दल हैं जिन्हें हम किसान मानते हैं, और अंततोगत्वा वे ही लोग किसान सभा बनाएंगे उन्हें ही ऐसा करना होगा।''[67]

1.6.2 स्वातंत्र्योत्तर किसान आंदोलन

भारत स्वतंत्र होने के बाद भारतीय कृषकों के सामने नई तरह की समस्याएं आने लगीं तब किसान उन समस्याओं के खिलाफ विरोध करना शुरू किया जो आंदोलन के रूप में हमारे सामने आते हैं।

क) शेतकारी संगठन किसान आंदोलन

1970 के दशक यह आंदोलन महाराष्ट्र में हुआ। इस आंदोलन का नेतृत्व शरद जोशी ने किया। आजादी के बाद का यह पहला किसान आंदोलन है। महाराष्ट्र के किसानों का यह संगठन कृषि उपज की उचित मांग को लेकर हुआ।

ख) महाराष्ट्र का किसान आंदोलन

यह आंदोलन 1980 में हुआ। इस दौरान महाराष्ट्र में प्याज के मूल्यों में गिरावट के कारण किसान सड़कों पर उतरने पर मजबूर हो गएं। यह आंदोलन महाराष्ट्र के प्रमुख किसान आंदोलनों में से एक था।

ग) रेठा संघ किसान आंदोलन

1980 में यह आंदोलन कर्नाटक के किसानों द्वारा किया गया। यह आंदोलन किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के उद्देश्य से हुआ। किसानों के लिए खेती में व्यापार के अवसर, प्रतिव्यक्ति आय में बृद्धि, कृषि संबंधी वस्तुओं के मूल्यों में बृद्धि जैसे- बीज, खाद, आदि भी आंदोलन के प्रमुख मुद्दे थे। आंदोलन को दबाने के लिए सरकार द्वारा किसानों पर गोलियां भी चलवाई गई। इस आंदोलन के बाद कर्नाटक का 'रेठा संगठन' किसानों की मांग उठाने वाला प्रमुख आंदोलन बन गया।

घ) 1984 का पंजाब किसान आंदोलन

1978 से 1984 के बीच पंजाब में यह आंदोलन हुआ। इस आंदोलन का मुख्य कारण कर्ज माफ़ी रहा, इसके अलावा गेहूं और चावल के मूल्यों में बृद्धि, सस्ती बिजली, डीजल एवं खाद जैसे मुद्दे भी आंदोलन में रखे गए। तकरीबन 1 हफ्ते तक किसानों ने चंडीगढ़ में पंजाब राजभवन को घेरे रखा। आंदोलन में पंजाब के अकाली दल के नेता 'हरचंद सिंह' द्वारा यह ऐलान किया गया कि किसान अब अपनी फसलें एफसीआई को नहीं बेचेंगे। किंतु यह आंदोलन बिना किसी परिणाम के समाप्त हो गया।

ङ) दिल्ली बोट क्लब किसान आंदोलन

1988 में यह किसान आंदोलन प्रमुख किसान नेता महेंद्र सिंह टिकैत के नेतृत्व में हुआ। इस आंदोलन में किसानों को अपनी वास्तविक शक्ति का अहसास हुआ। यह आंदोलन उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरपुर जिले के एक गाँव से शुरु हुआ था, किंतु यह आंदोलन राष्ट्र स्तर पर ही नहीं विश्व स्तर पर भी चर्चा का विषय बना। आंदोलन में कम से कम 1 लाख किसान शामिल हुए, किसानों की प्रमुख मांग बिजली आपूर्ति की थी। किसान एकता को देखते हुए सरकार ने किसानों की मांगे मान ली, किंतु यह आंदोलन यहीं नहीं खत्म हुआ। जनवरी, 1988 में भारतीय किसान यूनियन के बैनर तले किसानों का यह आंदोलन पुनः मेरठ में शुरु हुआ। इस किसान आंदोलन में पूरे देश के किसान शामिल हुए और करीब 25 दिनों तक किसानों का यह आंदोलन चला। 25 अक्टूबर, 1988 से किसान मेरठ से दिल्ली के 'बोट क्लब' पर एकत्रित होने लगें। तत्कालीन कांग्रेस सरकार ने किसानों को रोकने की भरपूर कोशिश की लेकिन सफल न हो सकी। फसल के उचित मूल्य, बिजली के दाम कम करने 35 मांगों को किसानों ने सरकार के समक्ष रखा। किसानों के जोश को देखकर प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने किसानों की 35 सूत्रीय मांगो को मानने का आश्वासन दिया तब जाकर बोट क्लब से किसानों का आंदोलन समाप्त हुआ।

1.6.3 इक्कीसवीं सदी के किसान आंदोलन

किसानों के शोषण की कहानी कभी नहीं खत्म होती है। आज भी किसानों को अपने शोषण के खिलाफ आवाज उठाना पड़ता हैं। अपनी समस्याओं को लेकर इक्कीसवीं सदी में भी किसान आंदोलन करने को विवश हैं।

क) नंदीग्राम किसान आंदोलन

यह आंदोलन 2007 में हुआ। इस आंदोलन के कारण बंगाल की दिशा ही बदल गई। करीब दो दशक से सत्ता पर विराजमान कम्युनिस्ट पार्टी का सदा के लिए बंगाल की भूमि से सफाया हो गया। इस आंदोलन की शुरुआत 2007 में तब हुई, जब सत्ता पर विराजमान तत्कालीन सरकार ने इण्डोनेशिया के सलीम ग्रुप को बंगाल के नंदीग्राम में रासायनिक फैक्ट्री लगाने के लिए 10 हजार एकड़ भूमि देने का निर्णय लिया। किसान अपनी भूमि देना नहीं चाहते थे और सरकार किसी भी कीमत पर किसानों की जमीनें हड़पना चाहती थी। इस कारण से किसानों और प्रशासन के बीच आमने-सामने की लड़ाई हुई, जिसमें अनेकों किसानों की जानें गईं। इस आंदोलन से सरकार की खूब निंदा हुई।

ख) मंदसौर किसान आंदोलन

1 जून, 2017 से मध्यप्रदेश के कई जिलों में किसान आंदोलन जोर पकड़ रहा है। मंदसौर जिले के अलावा मध्यप्रदेश के ही इंदौर, रतलाम, उज्जैन, नीमच, खरगौन, देवास, धार आदि जिलों में भी यह आंदोलन जोरों पर है। मध्यप्रदेश के किसानों का यह आंदोलन कर्ज माफ़ी और फसलों के उचित मूल्य को लेकर चलाया गया। सरकार किसानों की मांगों को गंभीरता से नहीं लेती है, इसी कारण यह आंदोलन हिंसक हो गया। सरकार किसी भी आंदोलन को दबाने के लिए पुलिस का सहारा लेती है, मंदसौर में भी यही हुआ। परिणामस्वरूप कई किसानों की जानें गईं जिसके कारण सरकार की खूब निंदा की गई।

ग) तमिलनाडु का किसान आंदोलन

सन 2017 में तमिलनाडू के किसानों ने दिल्ली के जंतर मंतर पर करीब एक महीने तक अपना आंदोलन जारी रखा। यह आंदोलन 'साउथ इंडियन रिवर लिंकिंग एसोसिएशन' के तमिलनाडु के अध्यक्ष और किसान नेता अय्याकन्नू के नेतृत्व में चला। यह आंदोलन किसान अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए कर रहे हैं। करीब 1 महीने तक दिल्ली के जंतर-मंतर पर किसानों का आंदोलन जारी रहा। किसानों ने मृत किसानों की खोपड़ियां लेकर एवं स्वयं को नग्न करके अपने विरोध का प्रदर्शन किया।

घ) कृषि अधिनियम 2020 के खिलाफ आंदोलन

वर्ष 2020 में जून के महीने में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी द्वारा लोकसभा में तीन नए कृषि कानून पारित किए गए। जिनमें पहला 'कृषि उत्पादन व्यापार और बाणिज्य' (संवर्धन और सुविधा) विधेयक 2020, दूसरा 'मूल्य आश्वासन एवं कृषि सेवाओं पर कृषक अनुबंध' विधेयक 2020, तीसरा 'आवश्यक वस्तु संशोधन बिल' आदि विधेयक पारित किए गए। इनमें अप्रत्यक्ष रूप से न्यूनतम समर्थन मूल्य को खत्म करने की बात की गई है, कॉन्ट्रैक्ट फॉर्मिंग, मंडियों से बाहर अनाज बेचने की सुविधा जैसी कई नीतियां बनाई गई हैं। किसान इन नई कृषि नीतियों के विरोध में नवम्बर 2020 से सिंघू बॉर्डर, टीकरी बॉर्डर एवं गाजीपुर बॉर्डर पर अपना आंदोलन कर रहे हैं। अब तक के इतिहास में यह सबसे लम्बा किसान आंदोलन है, इस आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह एक अहिंसक किसान आंदोलन है। इस आंदोलन में देश के विभिन्न राज्यों के किसान शामिल हैं दूसरी बात इस आंदोलन में महिलायें भी समान रूप से अपनी भूमिका निभा रही हैं। वैसे तो यह किसान आंदोलन में संपूर्ण भारत के किसान शामिल हैं किंतु आंदोलन की अगुवाई एक तरह से पंजाब के किसान कर रहे हैं। इस आंदोलन को लगभग छ: महीने होने को हैं किंतु किसानों की मांग पर सरकार कोई विचार नहीं कर रही है। आन्दोलन से संबंधित किसानों एवं सरकार के बीच कम-से-कम दस वार्ता हो चुकी है किंतु इसका कोई सकारात्मक परिणाम अब तक सामने नहीं आया है।

ङ) टप्पल किसान आंदोलन

यह आंदोलन अलीगढ़ के टप्पल नामक गाँव में 2010 में हुआ। यह आंदोलन किसानों ने भूमि अधिग्रहण के खिलाफ छेड़ा था। दरअसल सरकार द्वारा नोएडा से आगरा तक एक्सप्रेसवे के निर्माण करने के लिए टप्पल के आसपास के करीब पांच गाँवों की भूमि का अधिग्रहण किया जा रहा था। भूमि अधिग्रहण के तहत सरकार द्वारा जो मुवावजे की राशि तय की गई थी वह अन्य जगहों की मुवावजे की राशि की तुलना में कम थी जिसके कारण टप्पल के किसान भड़क उठे और सड़कों पर उतर आएं। यह आंदोलन हिंसात्मक हो गया था और आंकड़ों के आधार पर इसमें तीन किसानों की मृत्यु भी हुई थी।

कुछ बड़े आंदोलनों के अतिरिक्त भारत के विभिन्न राज्यों में किसान आंदोलन एवं किसानों के प्रदर्शन समय-समय पर होते रहे हैं। जैसे 2017 में आंध्रप्रदेश और तेलंगाना के किसानों ने अपनी उपज का ठीक मूल्य न मिलने के कारण आंदोलन का रास्ता अपनाया। महाराष्ट्र के किसानों ने तो मुंबई में दूध और सब्जियों की आपूर्ति ही बंद कर दी। किसान कितने भी आंदोलन कर लें लेकिन उनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं आता है। कोई भी सरकार आए वह किसानों के हित के लिए सिर्फ वादे करती है। कृषि उन्नति मेला 2016 में प्रधानमंत्री ने कहा- ''कृषि क्षेत्र को एक अलग नजरिये से विकासित करने की दिशा में सरकार प्रयास कर रही है।''[68] सरकार किसान विरोधी जो भी कानून बनाती है उसी के खिलाफ किसान आंदोलन करते हैं। कभी विकास के लिए तो कभी कंपनियों या अस्पतालों के नाम पर किसानों से उनकी भूमि हड़प लेती है, और इन्हीं अत्याचारों के खिलाफ किसान आन्दोलन करता है।

1.7 प्रमुख किसान नेता

भारत में किसानों की समस्याएं हमेशा से समाज में व्याप्त रही हैं, किंतु किसान समाज का सबसे भोला वर्ग होता है। उसे स्वयं अपनी ही समस्याओं की जड़ के बारे में नहीं पता होता है, इसलिए उसे उसकी समस्याओं से संघर्ष करने के लिए किसी नेतृत्व की आवश्यकता होती है। यही काम हमारे देश के किसान नेताओं ने किया।

क) चौधरी चरण सिंह

इनका नाम प्रमुख किसान नेताओं की श्रेणी में लिया जाता है। इन्होंने आजादी से पूर्व के किसान आंदोलनों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनका मानना था कि कृषि क्षेत्र के विकास के बगैर भारत में औद्योगिक विकास असंभव है। 1952 में ये कृषि मंत्री भी नियुक्त किए गए, इस दौरान इन्होंने उत्तर प्रदेश में जमींदारी एवं भूमि सुधार कानून पारित करके वहां के किसानों को भूमि पर मालिकाना हक़ भी दिलाया। वे कृषि विरोधी नीतियों का सीधा विरोध करते थे, इस कारण उन्हें जेल की हवा भी खानी पड़ी।

ख) चौधरी देवीलाल

इनका जन्म हरियाणा में हुआ और ये हरियाणा के प्रमुख किसान नेता के रूप में जाने जाते हैं। ये भारत के उप-मुख्यमंत्री भी रह चुके हैं। इन्हें 'ताऊ देवी लाल' के नाम से भी जाना जाता है। इन्होंने आजीवन किसानों, मजदूरों एवं समाज के गरीब वर्ग के लिए लड़ाइयाँ लड़ी।

ग) महेन्द्र सिंह टिकैत

महेन्द्र सिंह टिकैत का जन्म उत्तर प्रदेश के एक गाँव में हुआ, स्वतंत्रता के पूर्व भारत में हुए किसान आंदोलनों में इन्होंने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये सिर्फ राजनीतिक रूप में नहीं बल्कि सच्चे धरातल पर किसानों के सच्चे हितैषी बनकर उभरे, ये गाँव-गाँव घूमकर किसानों एवं मजदूरों को जागरूक करने का काम किया। इन्होंने अपने किसान आंदोलन को राजनीति से पूरी तरह अलग रखकर सफल बनाया।

घ) बाबा रामचंद्र

इनका जन्म मध्यप्रदेश में हुआ। उत्तर प्रदेश के अवध के किसानों की बदहाली को देखकर बाबा जी ने उत्तर प्रदेश को अपनी कर्मभूमि बनाया। 1919 से 1922 के दौरान अवध क्षेत्र में जो भी किसान

आंदोलन हुए उनका नेतृत्व बाबा जी ने प्रमुख रूप से किया। अपने कठिन प्रयास के कारण ही 1920 में ये 'अवध किसान सभा' गठित करने में सफल हुए।

ङ) स्वामी सहजानंद सरस्वती

इनका जन्म पश्चिमी उत्तर प्रदेश में हुआ। इन्होंने भी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी भूमिका निभाते हुए किसानों के प्रमुख नेता के रूप में अपनी पहचान बनाई। इन्होंने बिहार के किसानों को जागरूक करने के साथ-साथ 'बिहार प्रांतीय सम्मेलन' का भी गठन किया। इनके अनुसार भारतवर्ष का शासन उसी के अधिकार में होना चाहिए जो अन्न उपजाता है। ये जमींदारी प्रथा के सख्त विरोधी थे, इसलिए इनकी लड़ाई का केंद्र बिंदु जमींदारी प्रथा का खात्मा ही था।

च) सर छोटूराम

इनका जन्म 1945 में हरियाणा में हुआ। ये अपने भाईयों में सबसे छोटे थे, इसलिए इन्हें छोटूराम नाम दे दिया गया। इन्होंने एक समाज सुधारक के रूप में अपनी पहचान बनाने के साथ-साथ किसानों के लिए भी कार्य किए। इन्होंने किसानों में चेतना का विकास किया जिससे वे अपने शोषण के खिलाफ आवाज उठा सकें | इन्होंने ही किसानों को जीवन जीने का सही मूलमन्त्र दिया।

छ) राकेश टिकैत

ये प्रमुख किसान नेता महेंद्र सिंह टिकैत के बड़े पुत्र हैं। वर्तमान में ये भारतीय किसान यूनियन के राष्ट्रीय प्रवक्ता हैं। इनके निर्देशन में ही इक्कीसवीं सदी में किसान अपनी समस्याओं को लेकर सड़कों पर उतरता है। अपने पिता की भांति ही इनका उद्देश्य भी किसानों को समस्याओं से मुक्त कराना है।

1.8 किसान और बहुराष्ट्रीय कंपनियां

भारत में स्वतंत्रता के बाद कृषि की प्रक्रिया में अनेक सुधार करने के प्रयास किये गए। कई योजनाएं चलाई गईं, कृषि क्रांतियां आईं जिससे कृषि की दशा में सुधार लाया जा सके। कृषकों की दशा में सुधार

लाने के लिए देश में अनेक कृषि अनुसंधान खोले गये। भारत में 1910 में आईटीसी लिमिटेड कंपनी ने भारत में अपना कारोबार शुरू किया। जया मेहता के अनुसार- ''आईटीसी लिमिटेड द्वारा निर्यात किये जाने वाले कृषि उत्पादों की सूची में पशुओं को चारे के तौर पर खिलाई जाने वाली सोयाबीन की खली शीर्ष पर थी इसलिए स्वाभाविक रूप से आपरेशन ई-चैपाल वर्ष 2000 में सबसे पहले मध्य प्रदेश के सोया किसानों के बीच शुरू किया गया।''[69] इस तरह से इस कम्पनी ने भारत में अपनी पैठ बनानी शुरू की और धीरे-धीरे उसने हमारे यहां से कॉफी, गेहूं, मछली, आदि खरीद कर अपना विस्तार करना शुरू किया।

देश में पहली हरित क्रांति ने रासायनिक खाद, हाइब्रिड बीज आदि को इस्तेमाल करने पर जोर दिया तो दूसरी हरित क्रांन्ति में अमेरिका से कृषि व्यापार को जोड़ा जा रहा है। अमेरिकी कंपनियाँ वालमार्ट मोसेंटों ने भी देश में लगातार अपने व्यापार को बढ़ावा दिया है। हमारे देश में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते हस्तक्षेप ने किसानों को बहुत प्रभावित किया है। आज वे अपने रसायनों और बीजों का हमारे देश में प्रचार कर रही हैं किंतु उन बीजों से किसान एक ही बार अन्न उपजा सकता है। अगले साल फिर उसे नए बीज खरीदने की जरूरत पड़ती है ऊपर से इन रसायनों के इस्तेमाल से खेतों की उर्वरा शक्ति दिन प्रतिदिन घट रही है। प्रभाकर श्रोत्रिय के शब्दों में- ''कृषि उन्न्त खेती के उपक्रम हुए और बहुराष्ट्रीय कंपनियों को धड़ल्ले से आमंत्रित किया गया। कृषियोग्य भूमि पर बड़े-बड़े कारखाने लगाने, इमारतें बनाने और उन्नत कृषि-बीज, उर्वरक तथा कीटनाशकों के अति प्रयोग से पृथ्वी की उर्वरा शक्ति को अपूरणीय क्षति पँहुची इससे किसान की अन्न उपजाने की सामर्थ्य भी लगातार घटी है क्योंकि उपज, कर्ज और धरती की उर्वरता के क्षरण में अटूट सम्बन्ध कायम हो गया जो बढ़ता गया और किसान को हताश करता गया।''[70] सरकार जमीन का बड़ा हिस्सा इन कंपनियों को खेती करने के लिए दे रही है, जिससे कृषि जमीन घट रही है और खेती किसानों के हाथ से निकल रही है। सरकार द्वारा चलाई गई नीतियों से किसान अपनी जमीन से बेदखल हो रहा है। गौरीनाथ जी के शब्दों में-''धरती पर अनाज, फल, सब्जी बगैरह की पैदावार तो तब

भी होगी, लेकिन खेती किसान नहीं, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ करेंगी अपने फार्म-हाउसों में। सकल कृषि भूमि पर उन्हीं कम्पनियों का अधिकार होगा और कृषक जन मजदूर बन जाएंगे।''[71] देश में खेती का व्यापार करने वाली कंपनियां किसानों के साथ मिलकर काम नहीं करती वो तो सिर्फ किसानों को खेती से बाहर करने के मौके तलाशती है।

1.9 किसान और भूमिसुधार व्यवस्था

यदि हम ब्रिटिश शासन के पहले की बात करें तो मुगलों ने ऐसी व्यवस्था बना रखी थी जिसमें जमींदार और जागीरदार किसानों से लगान वसूली करते थे। ये जमींदार और जागीरदार किसानों के प्रति कुछ दयालु भी होते थे, किन्तु ब्रिटिश सरकार ने इस व्यवस्था को खत्म कर दिया और किसानों के लिए नए नियम लागू कर दिए गए। 'भारत विभाजन की अंतःकथा' पुस्तक में प्रियंवद ने कहा है- ''भारत की प्राचीन न्याय पंरपराओं से अलग यह इंग्लैण्ड की अपनी न्याय परंपरा थी जिसमें सब बराबर थे। गवाह, लिखित दण्ड संहिताएं, जज वकील आदि के माध्यम से एक पूरी न्यायिक सरंचना उपस्थित थी जो मुगलों के एकाधिकार व सामन्ती न्याय से अलग थी। भूमि के छोटे-छोटे, झगड़े, जमींदारों के उत्तराधिकारियों के बीच या साधारण किसान की अपील पर बड़े जमींदार के विरूद्ध आसानी से इस न्यायालय में लाये जा सकते थे।''[72] इस तरह से अंग्रेजो ने प्राचीन व्यवस्था को तोड़कर नयी भूमि व्यवस्थाएं लागू की।

क) स्थायी बंदोबस्त

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के आने के बाद हमारे देश के कृषि क्षेत्र में कई बदलाव आए। 1793 में लार्ड कार्नवालिस ने बंगाल, बिहार, उड़ीसा में स्थायी बंदोबस्त लागू किया। कारण यह था कि कम्पनी को सीधे तौर पर किसानों से लगान वसूलने और उसका हिसाब-किताब रखने में परेशानी का सामना करना पड़ता था। इस प्रथा में ब्रिटिश शासन द्वारा जमींदार और जागीदारों की नियुक्ति की जाती थी। और उनका काम होता था किसानों से लगान वसूल कर सरकार तक पहुँचाना। इन जमींदारों पर सरकार द्वारा लगान निश्चित रहता था। वे जमीन की मालगुजारी के हिसाब से जमींदारों से लगान लेते थे। यदि वे ऐसा

करने में असमर्थ होते तो उनकी जमींदारी उनसे छीन ली जाती थी। यह कार्नवालिस की एक चाल थी। सब्यसाची भट्टाचार्य के अनुसार- "शायद कार्नवालिस की नीति के पीछे एक राजनीतिक चाल भी थी वह यह कि अपने वर्ग-स्वार्थ की खातिर जमींदार ब्रिटिश राज्य का समर्थक हो जाएगा। चौथे अगर जमींदार भू-राजस्व जमा करने में असमर्थ होगा तो जमींदारी नीलाम हो जाएगी-यह नियम (जिसे सूर्यास्त कानून कहा जाता था, क्योंकि भू-राजस्व जमा करने की तारीख बीतते ही जमींदारी खत्म हो जाती थी) इस उम्मीद से बनाया गया था कि दक्षता के अभाव में जमींदारी एक हाथ से दूसरे हाथ में चली जाएगी।"[73] जब कभी जमींदार अपने दायित्व को पूरा करने में असमर्थ होते तो उसे उसका खामियाजा अपनी जमींदारी खो कर चुकानी पड़ती थी। स्थाई बन्दोबस्त में ऐसी कई घटनाएं सामने आती हैं जब कम्पनी द्वारा उनकी जमीनें छिनने के साथ-साथ उनकी जमींदारी भी छीन ली गयी। यह इस प्रथा के अंतिम चरण में हुआ। रजनी पाम दत्त के अनुसार- ''जमीन को बेचने और जब्त करने के कानून से थोड़े ही दिनों में बंगाल के बहुत से बड़े-बड़े जमींदार तबाह हो गए। किसी भी देश या काल में इतने थोड़े दिनों में भूमि-व्यवस्था में कहीं भी इतना बड़ा परिवर्तन नहीं किया गया, जितना बंगाल में।"[74] इस तरह यदि जमींदार निश्चित लगान को समय पर नहीं चुका पाते थे तो कंपनी उनसे जमीन हड़प लेती थी। ये जमींदार कंपनी को तय लगान चुकाने के लिए कृषकों से लगान वसूली करते थे। उनके साथ कोई सहूलियत नहीं बरती जाती थी। लगान समय से न चुकाने पर उनके साथ अत्याचार किये जाते थे। उनकी जमीनें हड़प ली जाती थी। जमींदार अपनी जमींदारी बचाने के लिए अकाल के समय में भी लगान वसूली में कोई कोताही नहीं बरतते थे। आलम यह होता था कि किसान भूख से मर रहे होते थे, किंतु कम्पनी को उसका पूरा लगान मिलता था। हंटर साहब ने कहा है- the revenues were never so closely collected before, पहले ऐसी कठोरता के साथ कभी राजस्व वसूल नहीं किया गया था। दूसरे ही वर्ष बंगाल में घोर अकाल पड़ा। राज पुरुषों में विलायत में कर्त पक्ष को लिखा, यहाँ बेशुमार आदमी भूखे मर रहें हैं। भाषा में ऐसा शब्द नहीं है जिससे

लोगों के कष्टों का वर्णन किया जाए। खूब उपजाऊ पूर्णिया जिले में भी इन कई महीनों में तिहाई आदमी मर गए हैं, पर आनन्द की बात यह है ही इससे पहले जितनी सोची थी उतनी राजस्व की हानि नहीं हुई।''[75]

ख) रैयतवारी व्यवस्था

यह व्यवस्था 1792 ई0 में सर्वप्रथम मद्रास और फिर बंबई में लागू की गई। इस प्रथा में लगान वसूली के लिए बिचौलियों को खत्म कर दिया। इस प्रथा में जमीन का मालिक स्वयं किसान होता था और कंपनी उससे सीधे-लगान वसूल करती थी। जी.एस.भल्ला के अनुसार- ''शुरूआत में लगान इतना अधिक था कि प्रायः पूरी उपज लगान में ही चली जाती थी। 1860 ई0 बम्बई में और 1855 में मद्रास में हुए लगान के पुनः निर्धारण में यह पहले से भी अधिक हो गया, जिससे अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गई और किसान विद्रोह हुए।''[76] इस व्यवस्था से किसानों का भूमि पर अधिकार तो हो गया, किंतु उनकी दशा में कोई परिर्वतन नहीं हुआ। लगान की वृद्धि के कारण उनकी दशा और दयनीय होने लगी और उन पर ऋण का बोझ बढ़ने लगा। यह व्यवस्था आगे चलकर पंजाब, मध्य-प्रदेश और उड़ीसा में भी लागू कर दी गई।

ग) महलवारी व्यवस्था

यह व्यवस्था 1822 ई0 में हाल्ट मैंकेजी द्वारा भारत में सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा पंजाब में लागू किया गया। इस व्यवस्था में भूमि पर पूरे ग्राम समुदाय का सामूहिक अधिकार होता था। और वे संयुक्त रूप से लगान अदा करते थे।

घ) चकबन्दी

इस व्यवस्था से छोटे एवं बड़े सब किसान को लाभ हुआ। इस व्यवस्था में किसी भी किसान या जमींदार के जमीन के अलग-अलग हिस्सों को एक ही जगह कर दिया गया जिससे कृषि करने में आसानी होने लगी। और खेती में होने वाला खर्च भी कम हुआ।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि खेती के शुरूआती दौर से अभी तक हमारे देश के किसानों की स्थिति में खास परिर्वतन नहीं हुआ। प्राचीनकाल से अभी तक किसानों की स्थिति में बहुत ज्यादा परिवर्तन नहीं दिखाई देता है। आजादी के बाद सरकार द्वारा किसानों एवं खेतिहर मजदूरों के लिए बहुत सी योजनाएं चलाई गईं, किंतु इन योजनाओं का लाभ भी सब किसानों तक नहीं पहुँच पाता और ज्यादातर किसानों का जीवन अभी भी संकट में ही है। किसान एवं खेतिहर मजदूर अपनी समस्याओं से जीवनभर संघर्ष करता रहता है इसलिए वे अपनी समस्याओं को लेकर समय-समय पर आंदोलन करते रहे हैं। यदि हम किसान एवं खेतिहर मजदूरों के आंदोलन की बात करें तो ये आजादी से पूर्व ही शुरू हुए और आज तक समाज में किसान एवं खेतिहर मजदूरों के आंदोलन लगातार होते रहे हैं। इतना सब करने के बावजूद आज भी वे जहालत का जीवन जीने पर मजबूर हैं।

संदर्भ

1. हबीब, इरफान; भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी परिकल्पना (अनु.) तरुण कुमार; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7 सुभाषचौक,लक्ष्मीनगर, दि.-110002; संस्करण: 2017; पृ. 113
2. सिद्धू, जसपाल सिंह, अनिल चमड़िया; कृषि सन्दर्भ और उत्पाद के विभिन्न पहलू; हंस (संपादक) राजेन्द्र यादव; अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली -110002; अगस्त, 2006; पृ. 186
3. हबीब, इरफान; भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी परिकल्पना (अनु.) तरुण कुमार; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दि.110002; संस्करण: 2017; पृ. 114
4. वही, पृ. 68
5. मजुमदार, रमेशचन्द्र एवं अन्य; भारत का बृहत् इतिहास; S.G. Wasani for Macmillan India Limited and Printed by V.N. Rao at Macmillan India Press, Madras-600041; संस्करण: 1994; पृ 66
6. वही, पृ. 109
7. हबीब, इरफान; भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी परिकल्पना (अनु.) तरुण कुमार; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दि. 110002; संस्करण: 2017; पृ. 7
8. शर्मा, रामशरण; भारतीय सामंतवाद; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002; संस्करण: 2019; पृ. 251
9. वही, पृ. 262
10. भट्टाचार्य, सब्यसाची; आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002; संस्करण: 2015; पृ. 40
11. सरकार, सुमित; आधुनिक भारत; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002; संस्करण: 2018; पृ. 50
12. हबीब, इरफान; भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी परिकल्पना (अनु.) तरुण कुमार; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दि.- 110002; संस्करण: 2017; पृ. 112
13. (सं.) वर्मा, रामचंद्र; संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर; नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी; संस्करण वि. संवत् 2060; पृ. 202
14. बाहरी, हरदेव; राजपाल हिन्दी शब्दकोश; 1590 मदरसा रोड, कश्मीरी गेट दिल्ली- 110006 पृ. 67
15. वर्मा, एस. के. एवं अन्य; अंग्रेजी - हिंदी शब्दकोश; Oxford University Press, New Delhi; Edition: 2003; पृ.- 64
16. भारत विश्वकोशकोश; अर्जुन पब्लिसिंग हाउस, 4831/24 प्रहलाद गली, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली- 110002, संस्करण : 2014; पृ. 688
17. वही, पृ. 688
18. वही, पृ. 688
19. जगरूप, पंजाब का कृषि क्षेत्र बदलती जमीनी हकीकत और संघर्ष का निशाना; किसान (सं.) महेश त्यागी; ग्राम-मांगरौली,पोस्ट-बेगमाबाद गढ़ी वाया दोघट, जिला बागपत,उत्तर प्रदेश; सितंबर,2016; पृ 9
20. शर्मा, रामशरण एवं अन्य; विश्व इतिहास की भूमिका; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002; संस्करणः 2010; पृ. 251
21. वही, पृ, 262

22. सरस्वती, स्वामी सहजानंद; किसान आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि (सं.) अवधेश प्रधान; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दि.- 110002; संस्करण: 2012; पृ. 401
23. हबीब, इरफान; भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी परिकल्पना (अनु.) तरुण कुमार; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दि.- 110002; संस्करण: 2017; पृ. 112
24. सरस्वती, स्वामी सहजानंद; किसान आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि (सं.) अवधेश प्रधान; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दि.- 110002; संस्करण: 2012; पृ. 319
25. कृष्णराज, मैत्रयी एवं अन्य; भारतीय महिला किसान (अनु.) अरविंद कुमार सिंह; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन-5 इंस्टीट्यूशन एरिया, नई दिल्ली-110070; संस्करण: 2014; पृ. 07
26. प्रसाद, भागवत; भूमि हकदारी एवं भूमि साक्षरता मार्गदर्शिका; अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान भारत जननी परिसर, रानीपुर भट्ट, सीतापुर चित्रकूट (उ.प्र.) 210204; संस्करण: 2004; पृ. 10
27. सिद्धू, जसपाल सिंह, अनिल चमड़िया; कृषि सन्दर्भ और उत्पाद के विभिन्न पहलू; हंस (संपादक) राजेन्द्र यादव; अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त, 2006; पृ. 188
28. देस हरियाणा; सं. सुभाष चन्द्र; लेख; 912, सेक्टर- 13 कुरुक्षेत्र, (हरियाणा) पिन- 136118; सितम्बर- अक्टूबर 2017; पृ. 04
29. सिद्धू, जसपाल सिंह, अनिल चमड़िया; कृषि सन्दर्भ और उत्पाद के विभिन्न पहलू; हंस (संपादक) राजेन्द्र यादव; अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली -110002; अगस्त, 2006; पृ. 188
30. प्रसाद, भागवत; भूमि हकदारी एवं भूमि साक्षरता मार्गदर्शिका; अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान भारत जननी परिसर, रानीपुर भट्ट, सीतापुर चित्रकूट (उ.प्र.) 210204; संस्करण: 2004; पृ. 10
31. भल्ला, जी. एस.; भारतीय कृषि आजादी के बाद (अनु.) रजनीश कुमार; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशलन एरिया, फेज-2 नई दि.- 110070; संस्करण: 2016; पृ. 240
32. श्रीनिवास, एम.एन.; भारत के गाँव (अनु.) मधु बी. जोशी; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2011; पृ. 21
33. शर्मा, रामशरण एवं अन्य; विश्व इतिहास की भूमिका; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2010; पृ. 15
34. झा, धीरेन्द्र; खेत मजदूर: हाशिये का बढ़ता हस्तक्षेप; हंस (सं.); राजेंद्र यादव अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली -110002; अगस्त, 2006; पृ. 124
35. शर्मा, रामशरण एवं अन्य; विश्व इतिहास की भूमिका; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2010; पृ. 15
36. कृष्णराज, मैत्रयी एवं अन्य; भारतीय महिला किसान (अनु.)अरविंद कुमार सिंह; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन-5 इंस्टीट्यूशन एरिया, नई दिल्ली-110070; संस्करण: 2014; पृ. 2
37. भल्ला, जी. एस.; भारतीय कृषि आजादी के बाद (अनु.) रजनीश कुमार; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशलन एरिया, फेज-2 नई दि.- 110070; संस्करण: 2016; पृ. 78
38. वही, पृ. 90
39. रविभूषण; भारतीय किसानों की आत्महत्या और हत्या; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089; जुलाई, 2017; पृ. 37

40. सरकार, सुमित; आधुनिक भारत; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002; संस्करण: 2018; पृ. 49
41. वही, पृ. 49
42. दत्त, रजनी पाम; आज का भारत (अनु.) रामविलास शर्मा; ग्रंथ शिल्पी प्रा. लि., बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली-110092; संस्करण: 2000; पृ. 237
43. वही, पृ. 239
44. वही, पृ. 239
45. शिवेंद्र, रामनाथ; भारतीय कृषि प्रबंधन के दोष; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089; दिसम्बर, 2017; पृ. 20
46. वही, पृ. 20
47. कृष्णराज, मैत्रयी एवं अन्य; भारतीय महिला किसान (अनु.) अरविंद कुमार सिंह; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन-5 इंस्टीट्यूशन एरिया, नई दिल्ली-110070; संस्करण: 2014; पृ. 2
48. शिवेंद्र, रामनाथ; भारतीय कृषि प्रबंधन के दोष; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089; दिसम्बर, 2017; पृ. 20
49. (विचार) जन संघर्ष की अनिवार्यता; ज. स. स. समिति; समयांतर (सं.) पंकज बिष्ट; 79- ए, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095; दिसंबर, 2017; पृ 16
50. वही, पृ. 16
51. कृष्णराज, मैत्रयी एवं अन्य; भारतीय महिला किसान (अनु.) अरविंद कुमार सिंह; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन-5 इंस्टीट्यूशन एरिया, नई दिल्ली- 110070; संस्करण: 2014; पृ. 17
52. भल्ला, जी. एस.; भारतीय कृषि आजादी के बाद (अनु.) रजनीश कुमार; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-2 नई दि.- 110070; संस्करण: 2016; पृ. 129
53. वही, पृ. 132
54. वही, पृ. 35
55. पल-प्रतिपल; (सं.) देश निर्मोही; लेख; एस. सी. एफ. 26, सेक्टर 16, पंचकुला; अप्रैल-जून 2018; पृ. 35
56. वही, पृ. 35
57. वही, पृ. 35
58. वही, पृ. 35
59. दत्त, रजनी पाम; आज का भारत (अनु.) रामविलास शर्मा; ग्रंथ शिल्पी प्रा. लि., बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली-110092; संस्करण : 2000; पृ. 218
60. पाण्डेय, डॉ. राम किंकर; हिन्दी साहित्य में किसान; अनंग प्रकाशन, बी -107/1 उत्तरी घोण्डा, दि.- 110053; संस्करण: 2016; पृ. 112
61. चंद्र, बिपिन एवं अन्य; भारत का स्वतंत्रता संघर्ष; हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय; संस्करण: 2009; पृ. 18
62. वही, पृ. 20
63. वही, पृ. 22
64. वही, पृ. 23

65. पाण्डेय, डॉ. राम किंकर; हिन्दी साहित्य में किसान; अनंग प्रकाशन, बी -107/1 उत्तरी घोण्डा, दि.- 110053; संस्करण: 2016; पृ. 215
66. शशिधर, रामाज्ञा; किसान आंदोलन : वैचारिक परिपेक्ष्य; हंस (सं.); राजेंद्र यादव अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त, 2006; पृ. 129
67. वही, पृ. 129
68. रविभूषण; भारतीय किसानों की आत्महत्या और हत्या; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली- 110089; दिसम्बर, 2017; पृ. 37
69. मेहता, जया; भारतीय खेती में बहुराष्ट्रीय कम्पनियां; हंस (सं.); राजेंद्र यादव अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त, 2006; पृ. 199
70. नया ज्ञानोदय; (सं.) अखिलेश जैन; (सं.) किसान आत्महत्या क्यों करता है; 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, पोस्ट बॉक्स नं. 3113 नई दिल्ली- 110003; मार्च, 2006; पृ. 5
71. गौरीनाथ; हम किस दिन के इंतजार में हैं ?; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089; अगस्त, 2017; पृ. 29
72. प्रियंवद; भारत विभाजन की अन्तःकथा; भारतीय ज्ञानपीठ 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नई दि.-110003; संस्करण: 2014; पृ. 73
73. भट्टाचार्य, सब्यसाची; आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली- 110002; संस्करण: 2015; पृ. 48
74. दत्त, रजनी पाम; आज का भारत (अनु.) रामविलास शर्मा; ग्रंथ शिल्पी प्रा. लि., बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली-110092; संस्करण: 2000; पृ. 224
75. देउस्कर, सखाराम गणेश; देश की बात (अनु.) बाबूराव विष्णु पराड़कर; नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली- 110016; संस्करण: 2005; पृ, 78
76. भल्ला, जी. एस.; भारतीय कृषि आजादी के बाद (अनु.) रजनीश कुमार; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-2 नई दि.- 110070; संस्करण: 2016; पृ. 15